

प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा

अमरचन्द्र नाहुटा



भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान,
बोकारनेर (राजस्थान)

भारतीय विद्या मन्दिर ग्रन्थमाला-४

● परामदा मञ्जल

श्री नरोत्तमदास स्वामी श्रेम श्रे
श्री नाथूराम खडगावत श्रेम श्रे
श्री अक्षयचन्द्र शर्मा श्रेम श्रे
श्री शम्भुदयाल सकसेना

● प्रथम संस्करण

भा स १८८४ [१९६२ ई०]

● मूल्य ₹ ०० रुपये

● प्रकाशक

भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान,
बीकानेर

● मुद्रक

एशुटेसनल प्रेस, बीकानेर

आभार

भारतीय विद्या मंदिर ग्रन्थमाला के अर्चन प्रकाशित श्री अग्रचन्द्रजी नाहटा की 'प्राचीन कालों की रूप परम्परा' पुस्तक को विश्व पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हा रही है।

प्रतिष्ठान की शुरु से ही यह नीति रहा है कि वह मान्य विद्वानों की कृतियों को सुसंपादित रूप में पाठकों के समक्ष रखे। श्री चन्द्रदानजी चारण द्वारा संपादित 'गोगाजी चौहान की राजस्थाना गाय' का जिस प्रकार साहित्य जगत में आदर हुआ है हमें आशा है इसी प्रकार श्री नाहटा के इन खोज पूर्ण निबन्धों का भी पूर्ण आदर होगा।

प्रतिष्ठान के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा एम० ए०, साहित्यरत्न के कायकाल में जिन कृतियों का संपादन और संग्रह हुआ उनमें से यह भी एक है। उनका मार्गदर्शन सस्था के लिये बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में राजस्थान शिक्षा विभाग एवं उसके अध्यक्ष श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता के सहयोग के लिये हम उनके बड़े आभारी हैं।

मूलचंद्र पारोक

रजिस्ट्रार

भारतीय विद्या मंदिर, बीकानेर

दो शब्द

राजस्थानी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री मगरचन्दजी नाहटा के इन खोज-पूण साहित्यिक निबन्धों को पुस्तकाकार प्रकाशित करते हुये हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है ।

बहुत पहले अभ्येताओं का ध्यान इन निबन्धों की ओर चला गया था और कई शोध प्रबन्धों के लिये ये भाषार भूत सामग्री प्रस्तुत कर पाये, यह कम गौरव की बात नहीं है ।

ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री, विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में बिलरी पड़ी रहने से शोध अभ्येताओं को अधिक लाभ नहीं होता था भव विद्वान् पाठक अब इस नये रूप में इनस ओर अधिक लाभ उठा पावेंगे ।

सत्यनारायण पारीक

अध्यक्ष

भारतीय विद्यामन्दिर शोध प्रतिष्ठान

भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरे गत इकतीस वर्षों में लिखे गये 'प्राचीन भाषा भाष्यों की रूप परम्परा' के सम्बन्ध में लेखों का संग्रह है जो समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं जैसे-नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन, सम्मेलन पत्रिका, भारतीय साहित्य, कल्पना, प्रज्ञता, घर भारती, राजस्थानी, सयुक्त राजस्थान, वागती प्रेरणा, दवनागर, राष्ट्र-भारती, घोष पत्रिका लोक कला जन मत्स्य प्रकाश आदि में प्रकाशित होते रहे हैं। उनमें से केवल चौदह उत्कृष्ट लेखों का संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अर्चित रचना प्रकारों के सम्बन्ध में गुजराती में दो अच्छे लेख प्रकाशित हो चुके हैं। त्रिममें स प्रथम "गुजराती साहित्य ना स्वरूपों" के लेखक मेरे विद्वान मित्र डा० मजुलान मन्मथदास हैं। उनका ८५० पृष्ठों का यह ग्रन्थ आषाढ बुक शिपो बंबोदा से सन् १९१४ में प्रकाशित हुआ है। दूसरा ग्रन्थ 'मध्यकालना साहित्य प्रकारों' डा० चन्द्रकान्त मेहता का सन् १९१८ में — एन० एम० त्रिपाठी बम्बई से प्रकाशित हुआ है। हिन्दी साहित्य में भी इसके सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय काम हुआ है। डा० रामबानू शर्मा ने 'हिन्दी के काव्य रूपों का अध्ययन' घोष प्रकाश लिखा है। उसका सारांश भारतीय साहित्य के अक्टूबर १९६६ के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसी प्रकार ग्रन्थ भी कई घोष प्रकाशनों में कविपय काव्य रूपों की अर्चा की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के 'फागु' नामक काव्य रूप पर मेरे विद्वान मित्र भोगेलाल साबितरा ने एक महत्वपूर्ण संग्रह प्रस्तुत किया है। जो सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ है। उक्त "प्राचीन फागु संग्रह" नामक ग्रन्थ में ३८ रचनाएँ मूल रूप से छपी हैं तथा अन्यारम्भ में फागु के साहित्य प्रकार पर भी अच्छे प्रकार डाला गया है। फागु रचना प्रकार के सम्बन्ध में विद्वान श्री अक्षयचन्द्र शर्मा एम० ए० ने भी एक उल्लेखनीय लेख लिखा है जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है। राधो' रचना प्रकार के सम्बन्ध में एक विलुप्त अध्ययन श्रीर कविपय महत्वपूर्ण राधो का संग्रह "राध और राधान्वयी काव्य"

नामक ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हो चुका है। 'बारहमासों' के सम्बन्ध में डा. महेंद्र प्रचण्डिया ने शोध प्रबंध लिखा है। 'विवाहका काव्यों' का सम्बन्ध में श्री पुरुषोत्तम मेनारिया शोध कर रहे हैं। 'वैलिकाव्यों' का प्राचीननात्मक अध्ययन डा० नरेन्द्र मानावत ने अपने शोध प्रबंध में किया है। 'पवाहा काव्य' के सम्बन्ध में श्री उषा महोत्रा ने शोध काय प्रारम्भ किया था। उनके कई लेख और पवाहे मद्रास में प्रकाशित हुए थे, पर वे अपना शोध कार्य पूरा नहीं कर पायीं। 'क्याली' के सम्बन्ध में जयपुर निवासी श्री प्रभूवत्तजी ने शोध प्रबंध लिखा है, वह अभी तक प्रकाशित है। 'हियातियों और प्रहेलिकाओं' पर डा० सकरदयाल चौधरी-व्यापक शोध कर रहे हैं। इसी प्रकार ग्रन्थ भी कई काव्य रूपों के पूण्ड या प्रासिक रूप पर कार्य हो रहा है। उन सब का यहां उल्लेख सम्भव नहीं है।

इस ग्रन्थ का सम्प्रथम लेख मेरे सुयमल मासन से दिये हुए "राजस्थानी जैन साहित्य सम्बन्धी तीन अभिप्रायणों में से मध्यम अभिप्रायण" का एक अंश है। इस में ११७ रचना प्रकारों की नामावली देने हुए ८० काव्य रूपों का सक्षिप्त विवरण दिया गया है। इन रचना प्रकारों का सर्वाधिक प्रयोग जन कवियों ने ही किया है। शताब्दियों तक इस परम्परा को निभाने का श्रेय भी उन्हें ही दिया जा सकता है। जन कवियों ने एक एक रचना प्रकार वाली कितनी ही रचनाएँ निमित्त की हैं। जिनका आभास प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखों से भी अन्धो तरह मिल जाता है। 'बारहमासों' की रचना तो इतनी अधिक है कि उनकी सूची देना भी सम्भव नहीं है। इसी प्रकार 'गीत' नामक काव्य रूप से भी इतने भेद हैं कि — उनकी लेकर स्वतंत्र शोध प्रबंध लिखा जा सकता है। महाकवि समय सुन्दर ने अनेक गीतों का निर्माण किया है जिनका सक्षिप्त विवरण मैंने अग्रन्तः के एक लेख में दिया है।

इस ग्रन्थ में जिन काव्य रूपों की खर्चा की गई है वे अधिकतर खेठाम्बर जन कवियों द्वारा प्रयुक्त हैं। दिगम्बर जन कवियों ने इन काव्य रूपों के अतिरिक्त और भी कई काव्य रूप अपनी हिन्दी रचनाओं में अपनाये हैं, जो मरो जानकारी में हैं, पर उसकी खर्चा इस ग्रन्थ में नहीं की जा सकी है। इन काव्य रूपों में से अधिकतर की परम्परा अजयपुर काल से निरन्तर चली आ रही है। अजयपुर भाषा की छोटी छोटी बहुत सी रचनाएँ गुटका भादि सग्रह प्रतिषों में होने से उनकी जानकारी अभी तक प्रकार में नहीं आई है और बहुत सी ऐसी रचनाओं को दोमक मष्ट भी कर चुकी है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन करने का नियम तो दो-तीन वर्ष पूर्व हो गया था, पर कई कारणों से यह अब प्रकाश में आ रहा है। पुरी सावधानी बरतने पर भी कतिपय असु-
द्वियां रह ही गई हैं। भगते सस्करण में ही इनका सुधार सम्भव है। मुझे विश्वास है कि
प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा पाठकों का भवदय ही ज्ञानवद्धन होगा। इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके
भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान ने एक उपयोगी काय किया है। अतः इस सत्या
के अक्षय्य धन्यवाद के पात्र हैं।

— सगरचन्द नाहटा

विषयानुक्रम

१ प्राचीन भाषा काव्यों की विविध सजाए	१
२ सधि सप्तक काव्य	२०
३ भारहृमासा सप्तक रचनाए	३०
४ फागु सप्तक काव्य	४६
५ विवाहलो मौर भगल काव्य	— ४६
६ धवल सप्तक रचनाए	६४
७ वेत्ति सप्तक काव्य	— ७८
८ रेनुमा सप्तक रचनाए	— ८९
९. पवाड़ा सप्तक काव्य	९२
१० सतसप्तक रचनाए	— ९९
११ राजस्थानी साहित्य में सवाद ग्रन्थ	१०५
१२ दवावत सप्तक रचनाए	११५
१३ सलोका सप्तक रचनाए	— १२८
१४ ब्याल सप्तक काव्य	— १३४
१५ हियानी सप्तक रचनाए	— १४५

प्राचीन भाषा-काव्यों की विविध संज्ञाएँ

उत्तर भारत की मगध या पुराणिक प्रादेशिक भाषाओं का विकास अपभ्रंश भाषा से हुआ है। वृद्धयमाना के उद्धारण के अनुसार नवी गीतों में मीनह प्रातीय भाषाएँ कुछ मौखिक विनोदनाओं के माध्यम से वास्तविक रूप में प्रचलित थीं, पर आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश भाषा में जाना जाता है कि साहित्य की भाषा सब एक ही रूप ले गई थी। उनके प्रातीय रूपों में अंतर विद्यमान था। बारहवीं शताब्दी में राजस्थानी भाषा के कुछ पुस्तकें एवं अन्य ग्रंथों में मिलते हैं। मुझ से संबंधित पद्य इसी समय के हैं। प्रथम ग्रंथों में मौखिक परंपरा के अनुसार उनका संग्रह किया गया प्रतीत होता है। आचार्य हेमचंद्र ने जो प्राचीन दोहे अपने ग्रंथ में संकलित किए हैं वे भी उनमें से ही हैं। वे पुराने तो अवश्य होंगे। अतः उनका भी समय दसवीं बारहवीं शताब्दी माना जा सकता है। उन दोहों तथा अन्य प्राप्त पद्यों के द्वारा अपभ्रंश में प्राचीन राजस्थानी के विकास के सूत्र मिल जाते हैं।

तेरहवीं शताब्दी में लोकभाषा में काफी परिवर्तन हुआ था इसलिए जन विद्वानों की अपभ्रंश के साथ साथ तत्कालीन भाषा में साहित्य निर्माण करना आवश्यक प्रतीत हुआ क्योंकि अपभ्रंश उस समय सुरक्षित नहीं रह गई थी और जन विद्वानों को जन धर्म के उपदेशों का प्रचार एही भाषा में ही करना था जिसे साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सके। अतः तेरहवीं शताब्दी से राजस्थानी की रचनाएँ हमें प्राप्त होने लगती हैं। ये रचनाएँ छोटी-छोटी हैं और संभवतः मंदिरों एवं उत्सवों में गीत एवं नृत्य के माध्यम से प्रचारित करने के उद्देश्य से रची गई हैं। नृत्य और गीत के साथ साथ नाट्यों के अभिनय में सुविधा नही होने अतः बड़े-बड़े काव्य संहिताएँ प्राकृत एवं अपभ्रंश में ही रच जाते रहे। 'राघ' मयक रचनाएँ मूलतः नृत्य के साथ गाई जाती थीं। चौदहवीं शताब्दी तक वे लक्ष्मीराम तालकरागमयिक नृत्य एवं गीत के साथ प्रचारित होती रहीं एसा व्यवहारों द्वारा राज्यों के अंत में फैल गए निर्देश से

विषयानुक्रम

१ प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएँ	—	१
२ संवि संज्ञक काव्य	—	२०
३ बाह्यभाषा संज्ञक रचनाएँ	—	३०
४ पद्य संज्ञक काव्य	—	३६
५. विवाहवो और मंगल काव्य	—	४६
६ कवच संज्ञक रचनाएँ	—	६४
७ वेदि संज्ञक काव्य	—	७८
८ रेसूपा संज्ञक रचनाएँ	—	८६
९ पवाड़ा संज्ञक काव्य	—	९२
१० सतसगक रचनाएँ	—	९९
११ पञ्चम्यानी साहित्य में संवाद काव्य	—	१०५
१२ दशरथ संज्ञक रचनाएँ	—	११५
१३ मनोवा संज्ञक रचनाएँ	—	१२५
१४ स्वान संज्ञक काव्य	—	१३४
१५ हियानी संज्ञक रचनाएँ	—	१४२

प्राचीन भाषा-काव्यो की विविध संज्ञाएँ

उत्तर भारत की मसूदा आधुनिक प्राचीन भाषाओं का विकास अपभ्रंश भाषा में हुआ है। कुवलयमाना के उद्धरण के अनुसार नवी गीतों में सोलह प्राचीन भाषाएँ कुछ मौलिक विशेषताओं के साथ जालबान के रूप में प्रचलित थीं, पर साठवीं से बारहवीं गीतों तक अपभ्रंश तथा में जान जाता है कि साहित्य की भाषा सत्र एव सी रूढ़ हो गई थी। अपने प्राचीन रूपों में अंतर विशेष नहीं था। बारहवीं गीतों में राजस्थानी भाषा के कुछ पुंज पर एक जन प्रबंध प्रयोगों में मिलते हैं। मुज से संबंधित यह हमी समय के हैं। प्रबंध प्रयोगों में मौखिक परंपरा के अनुसार उनका महत्त्व दिया गया प्रतीत होता है। साधारण रूप में जो प्राचीन दोहे अपने प्रयोग में संकलित किए हैं वे भी उनमें मौखिक रूप पुराने से प्रयोग होंगे। परंतु उनका भी समय दसवीं-बारहवीं गीतों माना जा सकता है। उन दोहों तथा अन्य प्राप्त पद्यों के द्वारा अपभ्रंश में प्राचीन राजस्थानी के विकास के सूत्र मिल जाते हैं।

बारहवीं गीतों में साधारण भाषा में काफी परिवर्तन हुआ था, इसलिये जैन विद्वानों को अपभ्रंश के साथ साथ तत्कालीन भाषा में साहित्य निर्माण करना आवश्यक प्रतीत हुआ क्योंकि अपभ्रंश उस समय सुशुद्ध नहीं रह गई थी और जैन विद्वानों को जन धर्म के उपदेशों का प्रचार ऐसी भाषा में ही करना था जिसे साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सके। अतः बारहवीं गीतों में राजस्थानी की रचनाएँ हम प्राप्त होने लगती हैं। ये रचनाएँ छोटी छोटी हैं और अत्यंत मधुर एव उत्तम में गात एव नृत्य के साथ प्रचारित करने के उद्देश्य से रची गई हैं। नृत्य और गीत के साथ लज बागों के अभिनय में सुविधा नहीं होने से अतः बड़े-बड़े काव्य मसूदा प्राकृत एव अपभ्रंश में ही रचे जाने लगे। राम मंत्र रचनाएँ मूलतः नृत्य के साथ गाई जाती थीं। चौदहवीं गीतों तक वे मकुटीराम लालकाम्यादि के नृत्य एव गीत के साथ प्रचारित होने लगे। अतः प्रचारकों द्वारा रामों के अंत में किए गए निर्देशों में

स्पष्ट है। इस समय के बड़े बड़े राज उपरान्त नहीं हैं। पन्द्रहवीं शती से प्रयोगातृ बड़े रास रथ जाने लगे और समय उनका विस्तार बढ़ता गया। तब उनका उद्देश्य क्यापातु का विस्तार न बर्णन करना हो गया और वे व्याख्यानो आदि र्थ का गाबर लये समय तक गुत्ताए जाने लगे। आज भी जन मयाज म यह प्रथा प्रचलित है। कुछ वय पूर्व तब स्वेदांवर जन मयाज में नियमित रूप से स्नान कर एवं रास का व्याख्यान डा रागों को गाबर हो किया जाता रहा है। रागों म अब भी रास प्रचार है पर रागों में कम होता जा रहा है। रागों के द्वारा व्याख्यान स्नेधानों को मोय कम पड़ा जाता समझते लगे इगनिय व्याख्यानो का अपनी विद्वता का परिचय देने क लिए प्राकृत एवं गुरुत काव्यानि प्रथों को प्रथम व्याख्यानो म अधिबन्ता स चयनात् पहा त्रिम प्रकार वि रात्रस्थान में जा मुनियों को त्रिनक व्याख्यान कुरु समय पहले तब मारवाडी भाषा म हृषा करने थे अब उगी कारण स मारवाडी का स्थान हिन्दी को लेना पहा है। फिर भी रास म जो निमित्त व्यक्ति कम है जन मुनियों के व्याख्या मारवाडी में ही होते हैं और उनम रास जाले प्राणि गाबर मुनाई जाती है। तरहणका सप्रणय में आज अधिबन्तर व्याख्यान मारवाडी म ही होत है और आनुषंगिक में रास के समय नियमित रूप से मुनि केगतर रचिन रामदगाशतायन राम की जाले गाबर मुनाई जाती है। पर मु समय के प्रभाव म अब इनमें भी हिन्दी म भाषण देता प्रारभ हा गया है क्योंकि इनके बिना नवनिमित्तों का आकषण कम होता है और वता भा निमित्तों की कोटि में नही समझे जाते। स्थानकवासी मय मय म रास अब भी रचे जाने है पर उनकी भाषा राज स्थानी क बन्ने हिन्दी प्रधान हो गई है। गुजरात में गुजराती के समृद्ध हो जाने के कारण आज भी रास गुजराती में ही रचे जात है।

यन् भाषा काव्या का परिचय देने क पूर्व उनकी विविध सजाओं की एक सूची प्रस्तुत की जाती है।

- (१) रास, (२) मधि (३) चौपाई (४) पागु (५) घमास (६) विवाहलो,
 (७) घनल, (८) मगल (९) वेनि (१०) मचोर (११) सवाद, (१२) धा
 (१३) ऋगो (१४) मातृका (१५) रावनी (१६) कक्क (१७) बारहमासा, (१८)
 चौमासा (१९) पत्राहा (२०) चचरी (चौचरि, (२१) जन्मान्धेक (२२) बनग,
 (२३) तीपमाला, (२४) चत्वरिपाटी (२५) संघ वरण (२६) डाग, (२७) डालिया,
 (२८) चौगनिया, (२९) छगलिया, (३०) प्रमथ, (३१) चरित, (३२) सपथ, (३३)

भाग्यान, (३४) कथा, (३५) मत्स्य, (३६) बभ्रोत्तगी, (३७) छत्तीसो, (३८) सतरी,
 (३९) बनीसो, (४०) दुक्कीसो, (४१) इकतासो, (४२) चौबीसी, (४३) बीसी, (४४)
 अष्टक (४५) स्तुति, (४६) स्तवन, (४७) स्तोत्र (४८) गीत, (४९) सज्जाम,
 (५०) चक्रवर्त्तन, (५१) देववर्त्तन, (५२) वीनती, (५३) नमस्कार, (५४) प्रभाती,
 (५५) मयम, (५६) साक, (५७) बधावा, (५८) गहूनी, (५९) होयानी, (६०) गुढा,
 (६१) गजन, (६२) लावरी, (६३) छत्र, (६४) नामासो, (६५) नररतो, (६६) प्रवहण,
 (६७) पारसो, (६८) वाहण (६९) पट्टावली, (७०) गुर्वावली, (७१) हमचडो, (७२)
 होंब, (७३) मालामारिका, (७४) नामपारा, (७५) रामपारा (७६) कुपक, (७७)
 पूजा, (७८) गीता, (७९) पट्टाभवेक, (८०) निर्वाण, (८१) मममथी विवाह वरण,
 (८२) आम, (८३) पत्र, (८४) मजरी, (८५) रसावली, (८६) रमायन, (८७) रम
 लहरी, (८८) चद्रावता, (८९) दीपक, (९०) प्रनीषिका, (९१) कुनडा (९२) जोड,
 (९३) परिक्रम, (९४) बरपनता (९५) लेख, (९६) विरह, (९७) भूदेही, (९८) सत,
 (९९) प्रकाश, (१००) होरी, (१०१) सरप, (१०२) तरणिसी, (१०३) चौक
 (१०४) हूँडी (१०५) हरण, (१०६) विनाम, (१०७) गरवा, (१०८) बीली, (१०९)
 अमृतध्वनि, (११०) शान्तिमो, (१११) रसोद, (११२) कडा, (११३) झुनणा,
 (११४) जकडो, (११५) बोहा (११६) कु डलिया (११७) छल्पय आदि ।

इन मसरत सनामों का निवरण देना इस लेख में संभव नहीं, मत्र प्रधान सनामा
 का ही संक्षेप में स्पष्टीकरण किया जायगा ।

(१) राम—राजस्थाना एव गुजराती भाषा की बड़ी रचनाओं में सबसे अधिक
 राम सनक ही हैं । राम सनक रचनाओं का निर्माण अथवा रचना से ही प्रारंभ हो जाता
 है । उपदेशरामायनरास और सदेशराम अथवा राम का ही रचनाएँ हैं । इनमें से उपदेश
 रामायनराम का नाम उनके रचयिता जिनदत्त मूरि ने केवल 'उपदेशरामायन' ही दिया
 है परंतु उसके टीकाकार मूरि जी के प्रशिष्य के शिष्य जिनपाम उपाध्याय ने उसमें 'रामक'
 जोड़कर उसे 'उपदेशरामायन राम' सनाम दे दी है । यह ग्रंथ साधारण जैन जनता के लिये
 उपदेश के रूप में, विशेषतः उस समय प्रचलित धर्मिकी को हटाने और विधि मार का
 प्रचार करने के उद्देश्य से पद्धतिबद्ध ८० श्लोकों में रचा गया है । टीकाकार के
 कथनानुसार यह सब रावों में गाया जा सकता है । इस ग्रंथ के छत्तीसवें पद्य में
 तानारामु और मगुडारामु नामक दो प्रकार के रावों का उल्लेख किया गया है—

मूल—तालासु वि दिति रयलिहि दिवसि वि लगकारसु सुं पुदिगिहि ।
 टीका—तालासुमहमवि ७ ददिनि भाग ११० प्रीपात्रात्रि तदानीगदरपयुष्म

विपानिकादिपुमहत्वात् । दिवसप समुहमा पुर्वीरुपाभनां यादिर्गु तरा तकिरुपाभप
 त्वा कनाबि प्रमादयशाभनकाप पातदनु वान् ।
 भाग्य यह है कि उग समय ज मन्त्रों म थावन चादि मोग रात्रि क समय
 तासियों के साथ (तान देवर) रागों को गाया करते थे उगमे जीपहिता की मभावना
 के कारण रात्रि में तानरान का निरप रिया गया है ।* मी प्रकार नि म पुषों के
 रियों क साथ समुहाराग करन (दृष्टियों क भाग नुरय करन हुए राम गान) को भी
 अनुबिन बताया गया है । जन मन्त्रों में य दोना राग चौहरी गता तक गले जाने से
 यह सं० ११२७ में रचित तातोरी राग म मली भांनि स्पष्ट हो जाता है—

बहनह सहह धमलमघ सावध गुणवता ।
 जोरै इषद्वु किनह भुवलि मनि हरण धरता ॥
 तोरै नामारस पडह बहु भाट पत्ता ।
 मनह मनुटारस जोरैदे लेला मावता ॥१८॥
 सविहू सरोसा तिलगार सकि तेवह तेवसा ।
 नावह धामीय रभरे तउ भावहि दडा ।
 गुलसित बागी मधुरि साहि जिएगुण बावता ।
 ताल मानु दन गीत मेसु साकिन्न वाजता ॥१९॥

(वाधान गुजर बाधमघह ममञ्जिरासु, पृष्ठ ५२)

राग मंगक दूसरी मपध व रचना मदेगरामक है । इसने रचयिता कवि धनुन
 रहमान ने चौदे पद्य में इरका नाम मनेहय रासय धीर उनीमवें पद्य में 'सनेह रासठ'
 दिया है, जो दोनों ही स देग रामक के मपध व हैं । रासय स सवृत्त रासक का
 मपध ग है । उमका परवती विचार य के स्थान में उ होकर रासठ' हो गया ।
 रासक का उल्लेख ह्यपचित (बाणभट्ट सातवी मठाणी) में मिलता है । यह एक

*— सं० ११०० के लगभग जीश्वर सुरि क थावन जगह रचित सम्पकत्वमाई
 षठपई में इनका स्पष्टीकरण इन प्रकार रिया गया है—तालासु रयलि नहि देर, लठडा
 (सु मूलह नारे ॥ २२ ॥ (प्रा० गु० म व सप्र ५० ८०)

उपरूपक विशेष है। वाग्भट्ट और हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में रासक के सबंध में निम्नाक्त स्पष्टीकरण किया है—

डाग्निका भाण प्रस्थान भाणका प्रेरण शिगक रामानाङ्ग इल्लीसद श्रीगदित—रासक मोष्टा प्रभुतोनि गेयानि । (वाग्भट्ट)

गेय डोडिका भाण प्रस्थान शिगक भाणिका प्रेरण रामानाङ्ग इल्लासक—रासक—गाधो श्रीगदित—राग काव्यादि । (हेमचन्द्र)

वाग्भट्ट व काव्यानुशासन की वृत्ति के अनुसार ये सब डोडिकादि गेय रूपक हैं।

पदार्थाभिनयस्त्रभाजनि डाग्निकादोनि गेयानि रूपकाणि चिरतनैरुक्तानि ।
इ ही मे से रासक भी एक रूपक है जिसका लक्षण इस प्रकार दिया है—

अनेकनतकीयोजय चिप्रतातलयाचितम् ।

भाषतु घट्टियुमलाद्रासक मसूणोदतम्॥

अर्थात् रासक एक ऐसा कोमल और चढ़त गेय रूपक है जिसमें अनेक नतकियाँ होती हैं अनेक प्रकार के ताल और लय होते हैं और ६४ तब के युगल हात हैं।

पीछे रास, रासु अथवा रासम शब्द प्रधानतया कथाकार्यों के लिये रूढ—मा हो गया और रसप्रधान रचना रास मानी जान लगी। रास' एक छंद विशेष भी है। राजस्थानी में रासा शब्द का प्रयोग लडाई भंगडे या गढबड घोटाले के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा है। पर तु प्राचीन जन रचनाओं के नामों में तो रास शब्द का ही प्रयोग मिलता है, रासो का नहीं कई पुरानी रचनाओं में 'रासु' भी मिलता है। सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एव अठारहवीं शती की कुछ विनोदात्मक रचनाओं में 'रासो' और 'रासी' शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। उदर रासो और माकड रासो आदि ऐसे ही रास हैं।

(२) सधि—अपभ्रंश काव्यों के सर्गों की सजा 'सधि' है। आशय हेमचन्द्र ने महाकाव्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—

पद्यप्राय ससृत्प्रकृतापभ्रंशप्राप्त्यमापानिबद्धभिन्नवृत्तसर्गाश्वासगध्यवस्त्वधकवच
सत्सचिरा दयवैचि-पापत महाकाव्यम् ।

अर्थात् महाकाव्य मुक्त प्रतिमुक्तादि सधियों एव शब्द अर्थ की विचित्रता से युक्त होता है तथा संस्कृत महाकाव्य सर्गों में, प्राकृत आश्वासों में अपभ्रंश सधियों में एव ग्राम्य रूपा में निबद्ध होता है।

'सधि' शब्द मूलतः प्रपञ्च महाकाव्य के सर्गों के लिये ही प्रयुक्त होता था किन्तु तेरहवीं चौदहवीं शती में वह एक सग वाले सप्त काव्यों के लिये भी प्रयुक्त होने लगा। प्रपञ्च स म जिनप्रभ सूरि प्राप्ति की सधि राजक पद्वह रचनाएँ मिलती हैं। सधियों की परंपरा उनीसवीं शती तक निरंतर चलती रही। चौदहवीं शती के तो दो ही सधि काव्य मिलते हैं किन्तु सातहरी स उनीसवीं तक राजस्थानी एवं गुजराती भाषा में वे पचासों का संख्या में प्राप्त हैं जिनमें राजस्थानी अधिक हैं और उनमें भी खरतरगच्छीय विद्वानों के सबसे अधिक।

(३) चौपाई—रास के बाद बड़ी रचनाओं में सबसे अधिक 'चौपाई' नामक रचनाएँ मिलती हैं। चौपाई या चौपई का संस्कृत रूप चतुष्पदी भी प्रयुक्त मिलता है। मूलतः यह चौपाई छंदों में लिखी रचनाओं का नाम था पर पीछे 'रास' की भाँति चरितकाव्य के लिये रूढ़ हो गया, यहाँ तक कि कहीं कहीं एक ही रचना की सत्ता किसी ने चौपाई लिख दी तो दूसरे ने रास। चौपाई छंद का प्रपञ्च काव्यों में भी प्रयुक्त हुआ है, पर इन ग्रंथों का नाम चौपाई नहीं रखा गया।

चौदहवीं शती से राजस्थानी रचनाओं के नामों में इन सत्ता का प्रयोग मिलने लगता है। नमिनाथ चतुष्पिका, सम्बन्धवाँ चौपाई—य दो सोलहवीं शती की रचनाएँ प्राचीन गुजर का यशप्रह में प्रकाशित हैं। इनमें स दूमरी रचना में लिखा है—'हासामिनि चउपई बहु किमउ।

(४५) फागु घमाल—वसंत ऋतु का प्रधान उत्सव फाल्गुन महीने में होता है। उस समय नर नारी मिलकर एक दूसरे पर शरीर झाड़ते हैं और जल की पिचकारियों से क्रीडा करते प्रयात् फाग खेलते हैं। जिन में वसंत ऋतु के उल्लास का कुछ बखान हो या जो वसंत ऋतु में गाई जाती हैं ऐसी रचनाओं को फागु सत्ता दी गई है। इन रचनाओं की यह विशेषता है कि इनमें शब्दालंकार के साथ यमक बंध अनुप्रास पाया जाता है। इस शली को फागु बंध कहा गया है। कुछ पद्य उदाहरणार्थ उद्धृत किए जाते हैं—

प्रसंहिलयाडउ पाटण, पाटण नयर जे राउ ।

दीसई जिहां भीध जिएहर, मणेर सपद ठाउ ॥८

(जै० प० गु० का अक्षय, दमनसुरि फाग, पृ० १५१)

पहिलू सरमति शरचोसू रचोसू वसंत विलास ।

वीण परद करि दाहिण, वाहण हसतु जात ॥

पृथुतीय तिहृणी हिव रति, वरति पृथुती वसत,

दह दिति परसद परिमल, निरमल ध्या नम भत ॥ २

(प्रा० गु० काव्य वसत विन्स', पृ० १५)

समरवि त्रिभुवनतामणि, कामणि सिरि तिरुमाह।

कवियण वयलि जा वरसद सरइस भ्रमिउ भ्रपाह ॥ १ ॥

(ओरापल्ला पारवनाय फागु पृ० ६७)

यह शली फागु सबधी सभी रचनामा में नहीं अपनाई गई है। स्थूलमद्र फागु प्रौर पिछले ध्य फागो में भी यह नहीं है।

फागु प्रौर धमाल दोनों ही एक प्रसंग से उद्बन्धित हैं अतः कई रचनाओं की सजा किसी ने फागु ही है तो किसी ने धमाल। फागु प्रौर धमाल के छंद एव रागिनी में भ्रतर होगा, पर पीछे से ये दोनों नाम होने के आसपास गाई जानेवाली रचनाओं के लिये प्रयुक्त होने लग। प्राचीन गिबर रचनाओं में धमाल का प्राकृत रूप 'डमाल' भी मिलता है। इसर लगभग डेढ़ सौ वर्षों से छाट छोटे भक्षन डफ और चमो पर गाए जाने लगे हैं उनकी सजा होगी भी पाई जाती है। फागु एव धमाल सनक रचनाएँ इनमें काफी बड़ी होती थीं। बहुत से यक्ति मिल कर चम डोल, डफ प्रौर भौंरु प्रादि वाद्या के साथ बहू गात थे, तब एक कोलाहन सा मच जाता था इनसे बोलचान में धमाल का प्रयोग कोलाहन वा उपद्रव के ध्य में भी होता है।

फागु सनक रचनाएँ धमाल से अधिक प्राचीन प्रौर अधिक तन्व्या में मिलती हैं। स० ११५० के आसपास से एसी रचनाओं का प्रारम्भ होता है। उपनच फागु काव्यों में स्रतरगच्छीय त्रिनदशीय मूरि का त्रिनचद सूरि फागु सवप्रथम प्रौर सबसे प्राचीन है। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के स्रतरगच्छीय यति राजहृष द्वारा रचित नमिफागु अतिम कृति है। राजस्थानी एव गुजराता में फागु सनक लगभग २० रचनाएँ उपनच हुई हैं, जिनका परिचय जन सत्यप्रकाश (वप ११ १२ एव १४) में प्रकाशित है। धमाल सनक रचनाएँ ॥ १० ही प्राप्त हैं प्रौर वे स्रतरहृषीं शताब्दी की ही अधिक हैं।

(६८) विवाहनी, धवन, मगल—जिसे रचना में विवाह का वर्णन हो उसे विवाहला कहते हैं। जन कवियों ने नेमिनाथ प्रादि तीर्थकरो प्रौर जनाचार्यों के समयधी वे माघ विवाह के प्रसंग को लेकर बहुत से विवाहले रच है। आचार्यों के लौकिक विवाह का तो कोई प्रसंग था नहीं, क्योंकि वे ब्रह्मचारी ही रहते थे अतः उपक

द्वारा ग्रहण किए गए वती का ही समयश्री मन्वी बना मान उसी वं साथ उनके विवाह का वणन इन काव्यो म रूपक वं रूप म दिया गया है। उदाहरणार्थ कवि सोममूर्ति द्वारा स० १३३१ म रचित त्रिनद्वर मूर्ति समयश्री विवाह वणन रास म त्रिनद्वरमूर्ति, त्रिनका बाल्यावस्था का नाम भवद्विभुमार था जब दीक्षा लेने की तयारी करते हैं तो पहले अपनी माता स दीदा की अनुमति मागते हुए कहते हैं—

इह ससाह दुःसह भडाह ता हठ नेहिसु प्रतिहि प्रमाह ॥६॥
परिसिमु सजमसिर वरनारी, माई माईए मग्भु मणह विपारी ।

इसके पश्चात् जब वं दीक्षा ग्रहण करने व लिए कुछ ही वं पास जाते हैं उस समय यान ले जान बाज बजने जीवनवार (भोज) होने चवरी (मद्य) मग्ने, प्रौर मग्नि साक्षि स समयश्री का पाणिग्रहण करने का वणन बहुत ही सुन्दर रूपको वं साथ किया गया है। यहाँ कुछ उद्धरण दिय जात है—

अभिनव ए चालिय जानउत्र अबहु तणइ विवाहि ।
मन्सुए ए धम्म पक्कवइ हूयउ जानह माहि ॥ १६ ॥
कारइ कारइ नमिचडु भडारिउ उच्चयडु ।
वापड वापड जान देति, सल्लमिणिए टरपु प्रवाह ॥ १७ ॥
कुसलिहि समहि जानउत्र पट्टितिय खेड मग्भारि ।
उच्चपु हूयउ मग् पवरो नाचइ करफर नारि ॥ २० ॥
जिणवइ मूरिए सुणिए पवरो देसए मग्गिय रसेण ।
कारिय जीमणवार ठहि जानह हरिस भरेण ॥ २१ ॥
सति जिणेतरे नर भुणसि, माडिउ नवि सुवेहि ।
परसिहि भविय दाए जलि, निम गयणएणि नेह ॥ २२ ॥
सहि मग्गयारिय मोपजइ भाणानलि पजसति ।
सउ सवेगहि निम्मियउ, हपसवउ सुमुहति ॥ २३ ॥
इणिए परि मग्गुवर कुयक परिणइ सजम नारि ।
वाजइ नदीयत्तर घण, मूडिय घर घर बारि ॥ २४ ॥

उपाध्याय मदनदन क त्रिनादयमूर्ति विवाहना मं श्री ऐसा ही सुन्दर वणन

है। उसमें विवाह करानेवाले जोशी का स्थान गुरुश्री को दिया गया है। ये दोनों काव्य हमारे ऐतिहासिक जन काव्य संग्रह' में प्रकाशित हो चुके हैं।

विवाहला सप्तक उपलब्ध रचनाओं में सबसे प्राचीन जिनप्रभसूरि रचित अंतरंग विवाह अपभ्रंश भाषा में उपलब्ध है। यह भी भाष्यात्मिक विवाह है आदिप्रत की पत्निया इस प्रकार हैं—

प्रारंभ—वमाय मुखठाण तहि अहे भवियजिउ निहवमु वच ए।

चहुविह सधु जभउन्न कीय अहे वाहण सहस सीलय ॥ १ ॥

अंत—इएपरि परिणए जो प जयि अह सहइ सो सिद्धिपुरि वासु।

मगलिकु घोर जिएप्रभ ए अहे मगलिकु चहुवीह सध ए ॥

(अंतरंग विवाह धवल वसंतरागेण भणनीय)

इसका रचना स० १३०० के ग्रामवाम की है और इसके बाद ही जिनेश्वर सूरि—सयमथी रास का स्थान है। इस प्रकार चौदहवीं शताब्दी से ऐसे काव्यों का निर्माण होने लगता है और बीसवीं शताब्दी तक क्रम जारी रहता है। ऐसी लगभग ८ रचनाओं का अभी तक पता चला है।

विवाह म गाए जानेवाले गीता की 'धवल' वा 'मगल' कहा जाता है और विवाह स्वयं एक मागलिक काव्य माना जाता है, अतः कई रचनाओं में विवाह के साथ 'धवल' शब्द भी नामात् पद के रूप में व्यवहृत है, जसा कि ऊपर 'अंतरंग विवाह' के साथ यह जुड़ा हुआ मिलता है। धवल सप्तक रचनाओं का प्रारंभ तेहरथी शताब्दी से होता है। 'जिनपति सूरि धवन गीत उपलब्ध रचनाओं में सबसे प्राचीन है, जो हमारे ऐतिहासिक जन काव्य संग्रह' में प्रकाशित है। ऋषभदेव विवाहल को सप्ता 'धवलवध' दी गई है। नमिनाथ धवल, वासपूज्य धवल आदि कुछ रचनाएँ 'धवल' संज्ञक प्राप्त हैं। हिन्दी, राजस्थानी और बंगला में जो 'मगल सप्ता वाल काव्य मिलते हैं, वे इसी परम्परा की देन हैं। राजस्थानी का प्राचीन काव्य 'रुक्मिणी मगल' बहुत प्रसिद्ध लोककाव्य है। पर इसका नामात् पद 'मगल' आधुनिक है। मूलतः लखक ने इसकी सजा विवाहलो ही दी है। इसकी सबसे प्राचीन प्रति स० १६६६ की प्रस्तुत लखक के संग्रह में है और दो प्रतियाँ उसे बीसवीं शती की प्राप्त हुई हैं। इसका मूल रूप बहुत छोटा था, पर तु समय समय पर हममें लोकप्रियता के कारण परिवर्तन परिवर्द्धन होते रहे। प्रकाशित

संस्करण हमारी प्रति से कोई बद्रह बीस गुना बढ़ गया है।

(६) वेनि— राजस्थानी साहित्य में क्रिस्तन रुक्मणो री वेनि' बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस सज्ञा का स्पष्टीकरण करते हुए वेनि अर्थान् तथा का सुंदर रूपक निम्नोक्त दो पद्यों में दिया गया है—

बल्सी तसु खोज भागवत चायो, महिपाणो प्रियुदास मुख ।

मूल ताल जड धरय मड हे मुषिर वरणि चडि छाह मुख ॥२६१॥

पत्र धवलर हल दाला जस परिमल नवरस तसु त्रिधि ग्रहीनिसि ।

मपुकर रसिक सुभगति मजरि फूल फल भुगति निसि ॥२६२॥

इस सजावाली पचास रचनाओं का मुझे पता लग चुका है, जिनमें पद्रह राजस्थानी तथा दो गुजराती जनतर रचनाएँ (सीतावेलि और वज्रबलि) हैं। हिंदी में भी मनोरथ बल्सरी तुलसीदास और भगवानदास रचित पात हुई हैं। २१ रचनाएँ जनों विद्वानों द्वारा रचित हैं जिनमें बाष्पा थावक की 'चहुँगति वेनि' सबसे प्राचीन है। इसका समय स० १५२८ के लगभग है। इसी शताब्दी में सीता लावण्यसमय और सहजसुंदर ने भी वेतिया बनाई। सतरहवीं से अनीसवीं शताब्दी तक यह क्रम जारी रहा। स० १८८६ के बाद इस सज्ञा वाली कोई रचना उपलब्ध नहीं है।*

(१०) सलोका— मूलतः संस्कृत श्लोक' शब्द से जनभाषा में सलोका या सिलोका शब्द प्रचलित हुआ प्रतीत होता है। मयकाल में वर जब विवाह के लिये समुराल जाता तो उसकी बुद्धि की परीक्षा के लिये पहले वर का साला कुछ श्लोक कहता और फिर उसकी प्रतिस्पर्धा में वर श्लोकों द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय देता था। पद्रहवीं शती के लगभग की एक रचना हमारे निजी संग्रह में है जिसमें वर ने साला को संबोधन करते हुए अपने आराध्य देव गुरु कुलदेवी, गोत्र मातापिता, गण, उसके शासक, सुरग, तीर्थ आदि के वरणात्मक श्लोक कहा है। लोक भाषा में उनकी यादवा भी है। इसके अंत में वरदान एवं सुखप्राप्ति के लिये गणेश और सरस्वती की प्रार्थना की गई है। उदाहरण के लिये विवाह मद्य के या की प्राप्ति आदि के श्लोक कहकर साले का कुतूहल पूरा करने की सूचना वाले तीन पद्य यहाँ दिए जाते हैं—

*उपलब्ध रचनाओं के सम्बन्ध में श्री वाषिष्ठा का लेख 'जनधर्मप्रकाश' व ६५ अंक २ में प्रकाशित है।

मध्यनिमित्तमनोहरवेदि प्रेक्षणादिककुतूहलपूरण ।
गीतलीनतल्लीपल्लरम्य स्वगलषट् इव मडप एव ॥ ८ ॥

अहा शालक । जेहनइ मधि चट्टु दिस नूतन वेदि बन रा करिउ मडित । लक्ष्मी
करिउ अलडित, चउरी अतुर चित्तु चोरइ । प्रेक्षणीय प्रनुम्ब कुतूहल सकुलु । घनल
मगल गीतगान तत्पर सु दर जन मनोहरु विचित्र पवित्र चद्रोदय सङ्गितु सवगलषट् विनिलव
मडपु सोमइ ॥ ८ ॥

तप्त तप साधुजनाय दत्त बान स्मृता पञ्चमश्रिया च ।
सतीशयात्रा विहिता च तैम पुष्येन सन्ध्या भवत स्वसेम ॥ १६ ॥

अहा शालक । मड पुर्तिलइ भवि निमलु चार भेदु तपु बीषउ । चारि त्रिधा
तपापन त्रिधी भावना पूर्वाकु दानु दीषउ । अनइ जिनशामन साव पच परमेष्ट नमस्कार
स्मश्रउ श्री शनु जय गिरिनार सरोवरइ त र्चि जाइउ । श्री वीतराग पूज्या । तीर्थि पुष्य
करिउ मइ ताहरी बहण लाषी । १६ ॥

नालिकरगतमेवमामय तत्र पुष्यगतपच तयच ।
शासक प्रचुरकाव्यसचय पूरयामि तव कौतुक यथा ॥१७॥

अहा शालक । जइ किमइ मुभरहद नालिकेर नउ सतु । अनइ फाफल ना पाच
सय । गयणि करइ एक मडि दिवइ । तउ इउ सनलोक समलु अनेकि मलोकि करिउ
आपग । शासक नउ कुतूहलु पूरवउ ॥ १७ ॥

विवाह के समय साले श्रीर वर के द्वारा तिलोव कहने की प्रथा प्राचीन है ।
विमन म श्री क विवाह के प्रसंग म कवि लावण्यसमय ने विमसप्रबंध में इसका उल्लेख
इस प्रकार किया है—

श्रुहता तोरणि जोइ लोक, तोएवा साला कहि गलोक ।
विम बाणि धमए नानमली ग्या साला ते दह निनि टली ॥१४॥

सतरगच्छ के धातिसागर सूरि श्रीर जिनसमुद्र सूरि के प्रवेशोत्सव आदि के
वर्णनवाली दो रचनाएँ 'राजस्थानी', भाग २ में प्रकाशित हो चुकी हैं । वे भी 'प्रहो
नालक' मबोधन के साथ हैं अत वे भी उगयुक्त विवाह-प्रसंग में वर के द्वारा कही जाने

के लिये ही बनाई गई प्रतीत होती है।

आगे चलकर उक्त प्रथा एव तद्विषयक रचना के प्रकार में अन्तर आ गया। गुजरात के उत्तरी भाग और राजस्थान में विवाह प्रसंग में सिलोक बह जाते हैं जिन्हें बरातियों में से जानकार लोग मन्दिर में दवी देवताओं एव वीरों के गुणों का वर्णन करते हुए विनोद ढंग के साथ कहकर सुनाते हैं। इन सबकी दली षड् हो गई है। राजस्थानी भाषा के छन्द प्रथम 'रघुनाथरूपक' में वचनिका का दूसरा भेद सिलोकी बतलाते हुए जो उदाहरण दिया है, वह नीचे दिया जाता है। उपलब्ध सलोकी में यही दली प्रयुक्त मिलती है—

दुमो भेद इल्लू लोकोक्त सिलोकी हो कहै ॥

बोल सीतापत इसशीजी बाँली सुरनर नायां न लाग सुहाँली।

सेसाजल हलमत जिमही सरसाई, वीरां अवरारी बीषी बडाई ॥

धनुषररा धायक सांभल जोपारा, बोरस भगों में बधियो अलपारा।

पुणव कर जोड जीतव फल पायो मान धीलावद इतरो फुरमायो ॥

इस दली के जन अनेतर पचासा राजस्थानी गुजराती सिलोक प्राप्त हैं, जिनमें बीसो छप भी चुके हैं। अठारहवीं दली से इनका रचनाक्रम चलता है और उनीसवीं के भी काफी सिलोके मिलन हैं। बीसवीं दली में यह प्रथा कमजोर होने लगती है। भव नगरी में सिलोका कहने की प्रथा का अंत हो गया है परन्तु गावों में यह अभी तक प्रचलित है।

(११ १३) स वाद वाग् भगदो— कवि हृदय विलक्षण होता है। वह अपनी कल्पना द्वारा जिन वस्तुमा में वास्तव में कोई विवाग् नहीं उनमें भी विरोधी भावना उत्पन्न करके उनके मुह से अपने गुण और महत्त्व का और अपने की हीनता का वर्णन कराता है। उन दोनों के प्रसंग के कवि की प्रतिभा का सुन्दर परिचय प्रस्तुत हो जाता है। ऐसी रचनाओं का नाम 'सम्वाद', वाद अथवा भगदो रखी गई है। सस्कृत में 'स वादसुन्दर' ग्रन्थ में भी ऐसे नौ स वाद संकलित हैं। राजस्थानी एव गुजराती में ऐसी लगभग तीस रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जो चौदहवीं दली से उनीसवीं तक की हैं। अनेतर स वादात्मक रचनाओं में बीकानेर के महाराजा रायसिंह के ध्यायित कवि बारहठ गकर क, दातार सूर से स वाद प्राप्त है। हिन्दी भाषा में भी नरहरि आदि कवियों द्वारा कई

स वादात्मक रचनाएँ लिखी गई हैं ।

(१४ १६) मातृका बावनी-कवक— इनमें वरुणमाला के अक्षर ५२ मानते हुए प्रत्येक वरुण से प्रारम्भ करके प्राप्त कवक पद्य रचे जाते हैं । ऐसी रचनाओं की संज्ञा 'बावनी' है । अथवा उसे ऐसी रचनाओं का प्रारम्भ होता है । इसकी भाँय संज्ञा 'कवक' है । हिंदी में इसे 'मलरावट' भी कहते हैं । तेरहवीं चौदहवीं गताब्दी की ऐसी चार रचनाएँ— गालिमद् कवक, दूहा मानिका, सम्यक्स्वमाई चौपाई, मानिका चौपाई प्राचीन गुजरात काव्यसंग्रह में प्रकाशित हैं । ये बावनी के पूर्व रूप हैं । सोलहवीं शताब्दी से ऐसी रचनाओं का नाम 'बावनी' व्यवहृत हुआ है यद्यपि छादि अतः न कुछ भाँय पद्य जोड़ने से पद्यों की संख्या ५५ ५७, या ६० तक पहुँच गई हैं । कुछ रचनाएँ मातृकाक्षरों के क्रम पर नहीं रची गई, पर उनकी पद्य संख्या २२ से कुछ ही अधिक होने पर उनको भी 'बावनी' कहा गया है । हिंदी, राजस्थानी, गुजराती तीनों भाषाओं में जन कवियों द्वारा रचित पचास के लगभग बावनियाँ हैं । जिन-जिन छंदों में रची होने से इनके नाम दूहाबावनी, सवयाबावनी, कवित्तबावनी, कृष्णलिया बावनी आदि रचे गए हैं और कुछ के नाम विषय के अनुसार धमबावनी, गुणबावनी इत्यादि मिलते हैं । टीकमगढ़ से प्रकाशित मधुकर पत्र में कई वष पूर्व 'बावनी संनक हिंदी रचनाएँ' दीपक लेख प्रकाशित हो चुका है । हिंदी भाषा की कतिपय बावनियों, वारहखण्डियों, बत्तीसियों आदि का विवरण लेखक द्वारा संपादित 'राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ४ में दिया गया है । इनमें उल्लेखनीय के अक्षरों का क्रम इस प्रकार रखा गया मिलता है— ओं (न भो सि ड) छ, झ, इ ई, उ, ऊ, ऋ, ए, लृ, लृ, ए, ऌ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, भ, ज ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष ।

(१७ १८) वारहमासा चौमासा— बारह महीना के ऋतु परिवर्तन एवं विरह-भाव को व्यक्त करनेवाली रचनाओंका नाम 'वारहमासा' है । जब और जनेतर दोनों प्रकार के बारहमासे सफरों की संख्या में भिन्नते हैं । साधारणतया एक एक महीने का चलन एक एक पद्य में होने से १५-२० पद्यों में ये रचे जाते हैं । पर कई बारहमासे बहुत बड़े बड़े भी हैं जिनकी पद्य-संख्या ४६-५० से लेकर १०० से ऊपर तक पहुँच गई है । प्रकृति चलन सम्बन्धी रचनाओं में इन बारहमासों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है ।

उपलब्ध बारहमासों में सबसे प्राचीन 'जिनघममूरि बारह नावड है, जिसकी पद्य-मह्या ५० है। यह तरहवी घतादी की रचना है और पाटन की तासपत्रीय प्रति में उपलब्ध है। नमूने के लिये कुछ पक्तिया नीचे दी जाती हैं—

तिहृयण मणि घूडामणिहि बारहनावड घममूरि नाहह ।
 निमुएह सुयणहृ । नाण सणाहह पहिमड तावण निरि फुरिय ॥१॥
 कुवलय दस सामल यणु उज्जड म भहसु मडन उभुणि छज्जड ।
 विज्जुलडी भवकिहि सवड मणुहह विवारेवि कसा सु ।
 घनु बरेविणु कलि केका वु फिरि फिरि नाचहि मोरला ।
 मेहणि हार हरिण छमिणवर श्रीरण भयड हिय नीलवर
 विपलिय नव भासड कलिय ॥२॥

बारहमासे नमिनाथ और स्थूलिभद्र सम्बन्धी अधिक मिलते हैं। इसी प्रकार बार मास का बणन करनेवाले चौमासे भी प्राप्त हैं।

(१६) पवाडा— किसी व्यक्ति के विनिष्ट बार्थों का बणन करनेवाली रचनाओं को पवाडा कहते हैं। पद्महनी गती में हीरानन मूरि रचित विद्याविलास पवाडों मिलता है। कुछ अन्य जन पवाडे भी प्राप्त हैं पर उनकी संख्या अधिक नहीं। साइयाकूना के नागदमण ग्रन्थ में पवाडा पनगा तण्डु घन मिलता है। बाद में महाराष्ट्र में पवाडों की परंपरा बहुत जोरो से प्रचलित हुई पर यह पद्य वीर का य के लिये रूढ हो गया।

राजस्थानी भाषा में पावू जी के पवाडे बहुत प्रसिद्ध हैं। ये पवाडे कदण एव वीर रस से सराबोर हैं। इनमें से सानी जी रो पवाडो राजस्थानी मारती' पद्य ३ अक्षर २ में प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार कई अन्य पवाडे भी राजस्थानी में प्रसिद्ध हैं। ये पवाडे पड (घटनाओं का दिग्दर्शन कराने वाला चित्रपट) को दिखाते हुए गाए जाते हैं।

(२०) चचरी— रास की भाँति ताल एव नृत्य के साथ, विशेषत उत्सव आदि में, गाई जानेवाली रचना को चचरी' कहा जाता है। विक्रमोवर्गीय के चतुर्षाक में अपभ्रंश भाषा के कई चचरी पद्य पाए जाते हैं, इससे इस भाषा की प्राचीनता का पता चलता है। प्राकृत विंगल में चचरी नामक व्यं भी बतलाया गया है। 'चचरी' और

‘चावरी’ इसके नामांतर हैं। जायसी में भी पागुन और होनी के प्रसंग में चावरि या चावर व, उल्लेख है। जिनन्त सूरि जी ने जिनवत्सलम सूरि जी की स्तुति में ४७ पद्यों की चावरी नामक रचना अष्टम अंग में रची है, जो अष्टम अंग ‘वाच्यनयो’ में प्रकाशित है। इसके पश्चात् जिनप्रम सूरि, सोनण, जिनेश्वर सूरि और एक अनान कर्ता की, ये चार चावरियाँ चौदहवीं गती में रची गईं। इनमें न सोलण वानी ३८ पद्यों की रचना प्रा० गु० वाच्यस ग्रह में प्रकाशित है।*

(२१-२२) जन्माभियेक, कथा— तीर्थवरों के जन्म के अवसर पर उन्हें इन्द्रादि देव मेरुदिग्घर पर ले जाकर स्नातक करते हैं, उम समय के भाव को प्रकाशित करनेवाली रचना को ‘जन्माभियेक वा कल’ संज्ञा दी गई है। तीर्थवर की प्रतिमा को कल में स्नान कराने समय ये रचानाएँ बोली जाती हैं। ऐसी लगभग १५ रचनाएँ चौदहवीं से सोनहवीं गती तक की उपलब्ध हैं। अब उनका स्थान पीछे की बनी हुई ‘स्नातकपूजा’ ने ले लिया है, अतः इसका प्रचार नहीं रहा। इस विषय पर ‘जैन मय प्रकाश,’ पृष्ठ १४ अंक ४ में प्रो० हीरानाथ कापडिया का ‘जन्माभियेक ने महावीर कल’ लेख प्रकाशित है।

(२३ २४) तीर्थयात्रा, चर्य-परिपाटी एवं सचयगन— जिन रचना में जन तीर्थों की नामावली हो उसे ‘तीर्थयात्रा’, जिनमें एक ही स्थान वा अनेक स्थानों के जन मंदिरों की यात्रा का अनुक्रम संवण हो उसे ‘सत्य परिपाटी’ वा ‘परिवाडी’ तथा जिसमें साधु-माध्वा-प्रावक आदिवा चतुर्विध मय के साथ की गई तीर्थयात्रा का वर्णन हो उसे ‘सचयगन’ संज्ञा दी गई है। तीर्थयात्रा ता प्राचीन भी मिलती है पर चर्य-परिपाटी चौदहवीं शताब्दी में ही प्राप्त है। सचयगन सतरहवीं शताब्दी में अधिक प्राप्त होता है। अनेक स्थानों की ऐतिहासिक सामग्री ऐसी रचनाओं में संकलित है। कई तीर्थयात्राएँ बहुत विस्तार में लिखी गई हैं और उनमें भारत के प्रायः सभी जैन तीर्थों के वर्णन हैं। तीर्थयात्रा वर्णनात्मक स्तवन भी छोटे बड़े अनेक मिलते हैं। प्राचीन तीर्थों का सग्रह ‘तीर्थयात्रा सग्रह’, पाटण चर्य परिपाटी’ एवं ऐसी अन्य बहुत सी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। अष्टम अंग रचनाएँ हमन संशुद्धीत कर ली हैं, वे यथासमय प्रकाशित की जायगी।

*विशेष द्रष्टव्य—अष्टम अंग वाच्यनयो पृष्ठ ११८, १४ एवं ‘जैन मय प्रकाश’ पृष्ठ १० अंक ६ में प्रकाशित श्री हीरालाल कापडिया का ‘चावरी’ शीर्षक लेख।

(२६ २६) ढाल, ढालिया चौढालिया, छ्ढालिया आदि— इन रचना के गाने की तर्ज या देगी की सजा 'ढाल' है। सतरहवीं छती में जब रास चौपाई आदि की रचना लोकगीतों की देखियो में हों लगी तब इनकी सजा ढाल बढ़ हो गई। बहूँ रामो में गताधिक ढालें पाई जाती हैं। चार या छ ढालोंवाली छोटी रचनाओं को सख्या के अनुसार चौढालिया या छ्ढालिया कहा गया है। अनेक प्रकार की देगियों वा तर्जों में रचे होन के कारण गुणसागर सूरि के हरिवंश रास को 'ढाल सागर' भी कहा गया है। सतरहवीं से पंद्रहवीं गती तक की रचनाएँ चौपाई, रास, भास यस्तु ठवणी आदि छ्ढो में बनाई जाती थीं। प्राचीन रचनाओं में एक छव के पूरे हो जाने पर एक 'कडवक' का पूरा होना माना जाता था। इसी तरह जब ढालों का प्रचार हुआ तो एक ढाल के अंत में दोहा या छ्ढ देकर उसे पूरा किया जाता था। ढालों में रची जाने के कारण रचना को 'ढालिया सजा' भी दी गई है।

ढालों की किस देगी के तर्ज पर गाना चानिए इसका निर्देश उन ढालों के प्रारम्भ में उस देगी की प्रारम्भिक पंक्ति उद्धृत करके किया गया है। देगियों की प्रथम पंक्तियों के इन उद्धरणों से सहजो प्राचीन लोकगीतों के अस्तित्व का पता चलता है। श्री देसाई ने बहुत सी देगियों का संग्रह जन गुजर कविओं के परिनिष्कल्प में प्रकाशित किया था। पर अभी इस लिगा में बहुत कार्य शेष है।

(३० ३४) प्रबध चरित्र मन्वध, आर्यायनक बधा— चरित्र आर्यायनक और बधा प्रायः एकाधवाची हैं। जो प्रबध जिसके मन्वध में लिखा गया है उसे वहीं कहीं उसके नाम से उसका 'मन्वध' या 'प्रबध' कहा गया है।

(३५ ४४) सतक, बहोसरी सतरी, छतीसी बतीसी इक्कीसी इबतीसी चौबीसी, बीसो, अष्टक आदि—

ये सब नाम रचानाओं के पद्यों की संख्या के सूचक हैं। इनमें से कई बतीसिया बावनी की भांति बलुमाना के बतीस अक्षरों में प्रारम्भ होनेवाले पद्यों की भी हैं। चौबीसी और बीसी चौबीस तीथकरी और बीस विहरणों के स्वप्ना के संग्रह रूप हैं।

(४५ ५३, ८३) स्तुति, स्तवन स्तोत्र, गीत, सज्जाय, चत्यवदन, देववदन, चीनती, नमस्कार, पद आदि—

इनमें तीथकारों या अन्य जन महापुरुषों के गुणों का बखान है। स्तुतिप्रधान रचनाओं को स्तवन स्तुति स्तोत्र वा गीत सजा दी गई है। इनमें स्तुतियाँ चार

पर्योवाली होती है, जिन्हें 'दूर्द्ध' भी कहते हैं। चैत्यवदन, मन्दिर में वदन करने की क्रिया विशेष है। बठकर स्तवन करते समय पहले चैत्यवदन पढ़ा जाता है। देववदन पद दिवसों के लिय विशेष अनुष्ठानरूप है। विनयप्रधान रचना को विनयि या वीनती कहते हैं। गेय पदों की मना गीत है। साधुओं व मत्तियों के गुण बखान करनेवाले तथा दुगुणा व परिहार एव सदगुणों के स्वीकार क प्रेरणादायक गीत स्वाध्याय' या 'सङ्गमय' कहनात हैं। 'पद' विशेष रूप से आध्यात्मिक गीता का कहते हैं। व राग रागिनियों म गाए जात हैं।

(५४ ५८) प्रभाती मगल, मारु बघावा, गहूनी आदि— प्रात बाल गाए जानेवाले गीतों को 'प्रभाती' मव 'मगन' और मध्या समय गाए जानेवालों को 'मौम' या 'सामो' कहते हैं। आचार्यों व आगमन पर बघाई व रूप में गाए जानेवाले गीतों को 'वधावा' वा 'वधावला' और आचार्यों के सम्मुख चावल के म्धमिक आदि की गहूनी करते समय उनके गुणबखाना व जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'गहूनी' कहते हैं।

(५९ ६६) हीयाली, गूना— जिन पदों का अर्थ गूना हो उह 'गूना' कहते हैं। किमी वस्तु के नाम गुप्त रखते हुए नाम को स्पष्ट करने वाली विशेष बातों का बखान जिनमें किया गया हो ऐसी रचनाया को 'हीयाली' या 'हरियाली' कहते हैं। हिन्दी में इह कूट कहा जाता है। इनक द्वारा बुद्धि की परीक्षा की जाती है। रामो में पति परनी की परस्पर माष्ठी का ज व बखान पाता है वही वे हीयालियो एव गूनाओं द्वारा परस्पर मनोरजन एव विनोद करते पाए जात हैं। प्राकृत सुभाषित ग्रन्थ 'वज्रानग' म हीयाली वजा की पद्धति है। उनम तो हीयाली भी गूना जैसी ही एकपद्यानी रचना प्रतीत होती है। परंतु जन कवियों की प्राप्त हीयालिया ५ ७ वा १० पदों तक की भी मिलती हैं। श्लोकवी गताम्नी म एसी हीयालियों का विशेष प्रकार हुआ। ये मकड़ों की सदया में मिलती हैं। लगभग पचास तो हमारे ही मग्रह म हैं। उनम कई बडी मुन्दर हैं। जन मुनियों ने अपने नित्य के व्यवहार मे आनेवाले घोषा, मुँहपति स्थापनाचारी आदि से सम्बन्धित हीयालिया भी बनाई हैं। गानमार जो रचित गूनावावनी ग्रन्थ हमारी गानमार प्रयावली में छप चुका है।

(६१ ६४) गजल, लावली छ— नीमाणी आदि—जन कवियों की गजल सनक रचनाओं म नगरों और स्थानों का बखान है। इनकी रचना का एक विशेष प्रकार होता था। सभी गजलें उम एक ही गानी में रची गई हैं। सबम प्राचीन नगर बखानात्मक गजल जटमन नाहर रचित 'नाहोर गजन' है जो म० १६८० के आसपास की है। भाषा

हिंदी है। अठारहवीं और उनीसवीं शती में गजलों रचने का बड़ा प्रचार रहा है। लगभग बालीस गजलों में से सगृहीत की हैं। उनकी भाषा प्रधानतया हिन्दी होने पर भी उनमें राजस्थानी के शब्दों का व्यवहार प्रचुरता से किया गया है। नावली, नीताली और छन्द भी रचना के विशेष प्रकार हैं। छन्द जन तीथकरा में पादवनाय के अधिक मिलते हैं। बसे लोकयाय देवी देवताओं के सम्बन्ध में तो काफी संख्या में मिलते हैं। सतरहवीं से उनीसवीं शती तक इनका प्रचार अधिक रहा। नावली अधिक प्राचीन नहीं मिलती।

(६४ ६८) नवरत्नो प्रवहण बाहण पारखो आदि— जिस रचना में गीरता का बगान हो उसका नामात्त पद 'नवरत्ना मिलता है। स्थुनमद्र और नेमिनाय क दो ही नवरत्ने प्राप्त हैं। 'प्रवहण और 'बाहण उन रचनाओं के नाम हैं जिनमें जट्टाज के रूपक का बगान होता है। भगवान महावीर आदि सर्वास्वियों के पारखों का जिसमें बगान हो ऐसी रचना को सगा पारख रली गई है।

(६९ ७०) पट्टावली शुर्वावली— इनमें जन गच्छो की प्राचाय परम्परा का इतिवृत्त से कलित किया गया है। पट्ट परम्परा का युव परम्परा का वर्णन होने से इसका नाम पट्टावली का शुर्वावली प्रसिद्ध है।

(७१ ७२) हमचडी हीच— तालियों से ताल देते हुए और सगीत की मय के साथ पावों से ठका देते हुए राम की भाति गोलाकार धूमते हुए जिन रचना को पुरुष गाते हैं उसे 'हीच और जिस स्त्रिया गाती हैं उसे हमचडी कहते हैं। कभी कभी पुरुष और स्त्रिया साथ साथ भी गाती हैं। इस से जावली जन रचनाएँ दो चार ही मिलती हैं।

(७३ ७५) माला मालिका, नामामाला, रागमाला आदि— जिन रचनाओं में तीथकरों के विशेषणों या साधुओं के नामों की माला गुणित की गई हो उह नाममाला मुनिमालिका, आदि संज्ञा दी जाती है। चीम के रूपको के नामोंवाली रूपकमाला से एक दो जन रचनाएँ सामह्यी गती की प्राप्त हैं। जिन रचनाओं में राग रागिनियों के नामों को प्रथित किया हो उहें रागमाला कहा जाता है।

(७६) कुलक— जिन रचना में किंगी नास्त्रीय विषय की आवश्यक बातें से दोष में से कलित की गई हो या किसी व्यक्ति का से क्षिप्त परिचय दिया गया हो उसको संज्ञा 'कुलक या 'कुलठ दी गई है। प्राकृत एव अपभ्रंश में सबडो कुलक मिलते हैं जिनकी सूची से कलित करके मैंने जनधम प्रकाश वर्ष ६५ अंक ८, ११ १२ में

प्रकाशित की है। राजस्थानी में मोहलवी सतरहवीं शताब्दी के कुछ कुलव प्राप्त हैं।

(७७) पूजा— जनागम रायपसेणोय मूत्र में तीर्थंकरों की मूर्ति में सतरह विधि का पूजन विधि का वर्णन है। जयद्वीपपद्धति आदि में तीर्थंकरों की जमाभियेक इसके सम्बन्ध में प्राकृत भाषा में कथाएँ भी मिलते हैं। उन पूजाओं में से स्नात्रविधि पहले संस्कृत में की जाती थी और पीछे मगध के जमाभियेक और बन भी इसी विधि में सम्मिलित कर दिए गए। पद्महवीं शताब्दी तक तो यही क्रम चालू रहा, पर मानहवीं में कवि दण्ड ने ताकालीन भाषा में स्नात्रविधि की रचना की। फिर इस सभावाली अनेक पद्य रचनाएँ राजस्थानी और गुजराती में बनना चली गईं। अष्टप्रकारी पूजा भी पहले एक एक श्लोक बोलकर करी जाती थी। पीछे में उसके विस्तृत वर्णनवाली पूजाएँ भी लोकभाषा में रची गईं। अन्य पूजाओं में भी इन आठ प्रकारों की महत्त्व दिया गया है। सतरहवीं पूजा का सतरहवीं शताब्दी में तपागच्छीय सकलचन्द्र और सतरहगच्छीय साधुकीर्ति आदि नवमप्रथम लोकभाषा में निर्माण किया। पूजाओं का प्रचार उन्नीसवीं शताब्दी में बड़े जोरों से हुआ। फलतः पचासों विविध नामवाली पूजाओं का उन्नीसवीं शती से अब तक निर्माण होता रहा है।

(७८) गीता— भगवद्गीता का प्रचार विगत कई शताब्दियों से बढ़ता चला आ रहा है अतः गीता' शब्द की लोकप्रियता से आकर्षित होकर कुछ जन विद्वानों ने अथ ६ में गीता सगुरु जन रचनाएँ भी की हैं, जिनका कुछ परिचय मैं 'श्रमण', पृष्ठ २

(७९ ८०) पट्टाभियेक निर्वाण, समयत्री विवाह वर्णन आदि— जिस रचना में जनाचार्यों के पट्टाभियेक (आचार्य पद प्राप्ति) का वर्णन हो उसे 'पट्टाभियेक रात' एवं जिसमें उनकी स्वर्ग प्राप्ति या निर्वाण वर्णन हो उसे 'निर्वाण' तथा जिसमें वीक्षा वर्णन की प्रधानता हो उसे 'समयत्री विवाह वर्णन' सभा दी गई है।

संधि सज्ञक काव्य

अपभ्रंश भाषा उत्तर-भारत की बहुत सी प्रमुख भाषाओं की जननी है अतः उन भाषाओं के समुचित अध्ययन के लिये अपभ्रंश के छांगोपांग अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है। इसकी बात है कि कुछ वर्षों से विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और अपभ्रंश साहित्य के अन्वेषण अध्ययन एवं प्रकाशन का कार्य दिनोदिन प्राये बढ़ता जा रहा है। प्रायः हीरालालजी जन का अपभ्रंश भाषा का बहुत अच्छा अध्ययन है। इसी प्रकार प० परमानंदजी के अन्वेषण में अनेक नवीन तथा अज्ञात अपभ्रंश शब्दों का पता लगा है। बहुत दिनों से मरी इच्छा थी कि अपभ्रंश साहित्य पर पूर्ण प्रकाश डालने वाला इतिहास ग्रंथ तय्यार किया जाय। दो सान वर्ष हुए मैंने उक्त दोनों विद्वानों को पत्र लिख कर अपभ्रंश साहित्य का इतिहास लिखने का अनुरोध भी किया था। उक्त में प्रोफेसर माहब ने सूचित किया कि उन्होंने इस विषय में एक विस्तृत निबंध लिख कर नागरी प्रचारिणी-पत्रिका में प्रकाशनाय भेजा है। प० परमानंदजी ने लिखा कि वे एक ऐसा ग्रंथ लिखने की तय्यारी कर रहे हैं। अतः मैंने विचार किया कि इन दोनों अधिकारी विद्वानों की कृतियाँ प्रकाशित होने पर ही मरा कुछ लिखना उचित होगा और मैं अपना इस मन्थन का शोध कार्य स्थगित कर दिया। इसीबीच मे शांति निकेतन में प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भेंट होकर अपभ्रंश साहित्य पर लिखने के लिये स्नेहानुरोध किया परंतु अपभ्रंश साहित्य विशेषकर जन विद्वानों का रचा हुआ ही अधिक है और मेरी ओर दिग्बर साहित्य की कमी है अतः इस कार्य की हाय में लेना उचित प्रतीत नहीं हुआ।

अभी कुछ दिन पूर्व नागरी प्रचारिणी-पत्रिका में प्रकाशित प्रोफेसर हीरालालजी का निबंध दृष्टिगत हुआ और विश्व भारती आदि पत्रिकाओं में श्रीयुक्त रामसिंह तोमर के लेख भी पढ़ने में आये। इनमें पुराने विचार को नवीन प्रेरणा मिली और इस विषय में शोध का कार्य आरम्भ किया जिनमें फल-स्वरूप पाच-सात निबंध लिखे गये जिनको पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने का श्रीगणेश इस निबंध द्वारा किया

जा रहा है।

प० परमानन्द जी इस विषय में क्या नवीन जानकारी देते हैं यह जानना अभी शेष है अतः अभी मैं उहावाता पर प्रकाश डालूंगा जिनके सम्बन्ध में इन दोनों दिग्गज विद्वानों की जानकारी बहुत सीमित होगी, अर्थात् श्वेताम्बर विद्वानों के रचे हुए साहित्य पर। यदि समय और सयागा ने साथ दिया तो विशेष विचार भविष्य में किया जायगा।

अपभ्रंश साहित्य की चर्चा करते समय श्वेताम्बर विद्वानों की अपभ्रंश साहित्य की महान सेवा को भुलाया नहीं जा सकता। जिस प्रकार दिग्गज पण्डितों ने अपभ्रंश के बड़े-बड़े महाकाव्य लिखे हैं उसी प्रकार श्वेताम्बर विद्वानों ने विविध नामों और प्रकारों वाले लघु काव्य लिखने में कोशल का परिचय दिया है। परवर्ती श्वेताम्बर साहित्यकारों की अपभ्रंश के इस लघु-काव्य-साहित्य से बड़ी भारी प्रेरणा मिली जिससे उनमें इन विविध परम्पराओं को अक्षुण्ण ही नहीं रखा कि तुल्य उन्हें विकसित करने और नये नये अन्वय देने में समर्थ हुए। अधिकांश की परम्परा भी एक-एसी ही परम्परा है और उसी के विषय में प्रकाश डालने का प्रयत्न हम निबन्ध में किया जा रहा है।

प्रस्तुत लेख के लिखने की प्रेरणा मुनि जी जिनविजयजी के एक पत्र से मिली जिस में उनका लिखा था—

मेरी एक विद्यार्थिनी, जो पा एच० डी० का अभ्यास कर रही है, वह कुछ अपभ्रंश आदि की सधि, जस अनान्द सधि, मावना सधि, केनी योग्य-सधि इत्यादि प्रकार के जो सधि प्रकरण हैं, उनका एक संग्रह कर रही है और सधि के स्वल्प आदि के विषय में शोध कर रही है। अभी उसने जिह्न किया और आपको पत्र लिखन बठा। इससे स्पष्ट हुआ कि आपके पास बड़ी बहुत सी कृतियां होगी। अगर हो तो भज दें ताकि उनका प्रच्छा उपयोग हो। व दनदास सधि, सुबाहु सधि आदि ऐसे अनेक प्रकरण हैं। पाठ्य वगैरह में कुछ प्रतियां हैं। उनको भी यथावकाश प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। पर इससे पहले आपके पास से अन्दी सुनभवा के साथ मिल सकेंगी ऐसा आशा में आपका लिख रहा हूँ।

मुनिजी का अनुमान सही निकला। अपन म ग्रह की सूची को ध्यान से देखत पर उसमें बहुत बड़ी महत्त्वपूर्ण सधि काव्य प्राप्त हुये। अपभ्रंश सधि काव्य के साथ साथ अठारह-बोग परवर्ती सपिकाव्य भाषाक भी उपलब्ध हुए। इनके अतिरिक्ति बीकानेर वृद्ध पान

भंडार आदि अथवा सब्रह्मा में भी सधिका थोड़ी अनेक प्रतिया विद्यमान है जिनमेंसे कई अंक नवीन भी हैं ।

सधि नाम का अर्थ

अपभ्रंश में सधि शब्द संस्कृत के सग या अभ्याय के अर्थ में आता है । आचार्य हेमचंद्र लिखते हैं—

पद्य प्रायः संस्कृत प्राकृत पञ्च श प्राम्य भाषा निबद्धभिर्नात्यवृत्त सर्गाऽऽश्वात-
सभ्यवत्कथक नप सत्सधि शक्याथ कथिन्योपेत महाकाव्यम् ।

इससे जान पड़ता है कि संस्कृतक महाकाव्य सर्गों में प्राकृतके महाकाव्य आश्वातो म, अपभ्रंश के महाकाव्य सधियों में और प्राम्यभाषा के महाकाव्य अवस्कधो में विभक्त होत थ । परवर्ती कवियों ने अक सधिवत् खडका वाकी सधिकाव्य नाम दिया ।

महाकाव्यका अर्थक सधि अनेक कठवर्कों में विभक्त होता था । इन सधिका दो में से कई कठवका में विभक्त हैं कई नहीं है ।

अपभ्रंश के सधि काव्य

हमारी शोधस अभी तक नीचे लिखे अपभ्रंश के सधिकाव्योका पता चला है —

(१) अनाधि—सधि

कर्ता—जिनप्रभ सूरि

समय—संवत् १२६७ के लगभग ।

कथा वस्तु के लिये उत्तराखण्ड मूत्र देखना चाहिये ।

आदि—जस उजवि माहृष्या परमप्या पाण्डिणी लहुं हूँति

त तित्थ सुपसरथ जयइ जग्गे वीर जिण-पहुणो

जिसग्गेहि विनडिठ कसाय जगडिठ हा अण्णाहु तिहुयण भमइ

जो अण्ण जाण्णइ सम सुहुं माण्णइ अण्णारामि षु अभिरमइ

रायगिहि नयरि सेखीउ राठ बुद्धमत्ति निवेसिय वीयरउ

सो अन्न दिवसि उज्जाणि पत्तु मुणि पिक्खवि पण्णमइ नमिय गत्तु

अत— चाइ चउ सरणु गमणो दाणाइ सु घम्म पत्त पाहेउ

सोलग रहाइडो जिणपह पहिमो सया सुहिमो

अण्णापिया सधि ॥ कठव ॥२॥

(२) जीवानुशास्ति सर्ग ३

कर्ता— जिनप्रथ

प्रादि— जस वहाणज्जवि तव सिरि ममलकिया जिया द्वैति
सो एण्व पि अणघो सघो मट्टारगो जयइ ॥१॥
मोहारिहि जगट्ठिय विसमहि विनट्ठिय
तिक्ख दुक्ख-खट्ठिय सट्ठियह चिक्ख

ससार विरत्तह पसमिय चित्तह
सत्तह देमि सुसट्ठि निक्ख ॥२॥

भत— इय विविह-पयारिहि विहि अणुसारिहि
भाविहि जिएणपहु मणुसरहु
सुत्तेण य पवरिहि पाणामु सरिहि
अवियण भव सायह तरहु ॥३१॥

जीवानुशास्ति सर्ग समाप्त

(३) मयणरेहा सर्ग

विस्तार— कठक ५

कर्ता— जिनप्रथ

समय— सवत १२६७, भादि वन सुवत्ता ६

प्रादि— निरुक्खम-नाण निहाणो पसम पहाणो विवय सनिहाणो
हुगइ दार पिहाणो जिन वम्मो जयइ सुह कामो ॥१॥
सुमरिदि जिण सासणु सुह निहि सामणु
निरि नमि महरिसि मणि चरिठ
पभणिसु सवेविहि मयणरेह महा-सइ चरिठ ॥२॥

भत— येसा महा-सईमे संघी सधीव सजम निवास
ज नमि निवरिसणा सह ससक्करा खीर सजोगो ॥३॥
वारह सत्ताणउभे वरिस पासोम सुढ छट्ठिमे
सिरि सघ परयणाघ अय लिहिय सुप्पाभिहिय ॥३॥
मयणरेहा सर्ग समाप्त ॥

(४) वयस्वामि सधि

कर्ता— वरदत्त (?)

आदि— ग्रह जण निमुण्डिञ्जठ व नु धरिञ्जठ

वयस्वामि मुणियर चरिउ

मत— मुणियर वरदत्ति जाणहर भात्त वयस्वामि— गणहर— चरिउ ।

साङ्गिञ्जठ भावि मुच्चठ पायि जि तिहयणु निय पुण भरिउ ॥११॥

चरिउ सुमारउ भविय विचारउ वहरसामि गणहर— चरिउ ।

जो पठइ विद्यावह गुण रवणाव सो सह पावइ परम पठ ।

वहरसामि सधि समाप्त ॥

(५) अतरग-सधि

कर्ता— रत्नप्रभ

आदि— पणमवि दुह लडण डुरिय विहडण जगमटण जिण सिद्धिठिय

मुणि क न रसायणु गुण गण भायणु अतरग मुणि सधि जिम ॥१॥

वह अरिय गामु भव काम खामु बहु जीव ठामु विमपाभिरउमु

दोसति जय अण्णिठि छेह बहु रोग भोग दुह जोग गेह ॥२॥

मत— ग्रहि अतह वारणु विस उत्तारणु ज गुलिमतह पणु जिम

पय सिव सुह-सधिहि ग्रह सुसधिहि चितणु जाणु भविय । तिम ॥१८॥

इति अतरग सधि समाप्त । इति नवमाधिकार ॥

(६) नमदासु-दरी सधि

कर्ता— जितप्रभ पिप्य

समय— सवत १३२८

आदि— अज वि अरम पहावो विवसिय पावो थ ऊवसिय पयावो

त वटमाण— तिरिय नदठ भव— जणहि— बोहिःप ॥१॥

पणमवि पणइदह धोर जिणवह चरण कमलु तिवल्लिञ्ज कुलु

सिरि-नमयासुन्दरि गुण जल सुरसरि विपि श्रुतिवि लिउ जम पलु ॥२॥

सिरि वटमाणु पुह अरिय नयह तहि मपइ नरवइ धम्म पवह

तहि वसइ सु सावणु उवहसणु अणुदिएण अमु मणि जिणनाह वयणु ॥३॥

तन्मञ्ज वीरमद् कुन्वि-जाय दो पवर पुत तह इक्क पुम ।

सहदेव वीरसाहिहाण रिसिदत्त पुत्ति गुण-गण पहाण ॥४॥

अत — तेरस तय घटवीसे-वरिसे सिरि जिणपहुप्पमायेण

भेसा सघी विहिया जिण्ड-वयणानुमारण ॥७१॥

श्रीनमदासु दरी-मणाम्ही-स धि समासा ॥

(७) अवलि-मुक्कमाल सधि

(८) स्पूनिभेद्र सधि

विस्तार— कडव २ गाथा १३ + ८

आदि— मठ जिहार पावारह मोहिउ

धर मन् पवर पुर भपरनाहु पिक्कवि मोहिउ

इय धेरिसु पाठनिय पुव जूदीव विक्काउ

कद् रज्जु जिय मत्तु तहि नहु महावलु राउ ॥१॥

अत — कोवि गिय तणु तविण सोसइ कुवि अरन वण निवसमे

पिा कोवि विर सवालु भवणइ सावि तुय घात कमे

जो वेम धरि चउ मासि निवमइ सरस भोयण सिउउ

तमु पून्मद् व (४) पायभ एमठ जिणि मयण तुहुं जिउउ

विशेष— ऊपर उल्लिखित ममस्त रचनाओं पाटण के जन भण्डारों में हैं ।

इनका विवरण बड़ीदा क गावकवाड धोरियटन सीरिउ व प्रनासिठ पाटण भण्डारों के सूचीपत्र में दिया गया है । ऊपर जो उद्धरण दिय गये हैं व भी वही में लिये गये हैं । इन सूचीपत्र में पृष्ठ ६८ पर अनाधि सधि धीर जीवानुगास्ति सधि नामक दो और सधियों के उल्लेख हैं, परन्तु उनके साथ उद्धरण नहीं होने से यह वही बताया जा सकता कि व न० १ और २ में मिले हैं या मिले न ।

(९) भावना-सधि

विस्तार— कडवक ६ गाथा ६२

कर्ता— जयन्व, गिवन्व सूरि गिध्य

आदि— पणमवि गुण सायर भुरण-निवायर जिण चउवीस वि इक्कमणि

अप्य पडिबोइइ मोह निरोइइ कोइ भव्य भावय वमिणु ॥१॥

र जीव निमुणउ चचल सहाव मिलहेविणु समय विवायभावु
नवमेय परिग्गह विह्व जालु स साग् इत्य सहु इ दियानु ॥२॥

अत— निम्मलगुण भूरिहि सिवदेवसूरिहि पन्म सीसु जयदेव मुणि
किय भावण स धो भावु सुवधी णिसुणहु अनवि घरउ मणि ॥६२॥

इति श्रीभावाना स धि समाप्ता

प्राप्तिस्थान— हमारे स ग्रह में स० १४६३ के लिखित गुटके में ।

विशेष— यह स धि जनयुग वष ४, के पृष्ठ ३१४ पर प्रकाशित भी हो चुकी
है । उसी पत्रिका के पृष्ठ ४६६ पर इसके सम्बन्ध में श्रीयुक्त मधुसूदन मोदी का लेख लल
भी प्रकाशित हुआ है ।

(१०) सीस स धि

विस्तार— भाषा ३४

कर्ता— अग्निवर सूरि शिष्य

भादि— सिरि नेमि—जिणदह पण्य—सूरिदह पय पकय समरेवि मणि
वन्मह—उरि—कीलह कय—सुह सीलह सीलह स थव करिस हउ ॥१॥

अत— इय सीलह स धो अइय सुवधी जयसेर—सूरि—सीस कय
भविदह निमुखेविणु हियइ धरेविणु सीस—धम्म उज्जम करहो । २॥

इति सीस—स धि समाप्त ॥

प्राप्तिस्थान— हमारे स ग्रह में उक्त स० १४६३ के लिखित गुटके में ।

(११) तप—स धि

कर्ता— सोमसु—दर सूरि शिष्य—राजरात्र—सूरि शिष्य

अ त— सिरि—सोमसु दर—गुह—पुर—दर पाय पकय हमधो ।

सिरि विसाल—राया—सूरि—राया—धंदमच्छवसधो

पय नमीय सीसइ तामु सीसइ अस सधो विनिम्मिषा

सिव सुवस कारण दुह निवारण तव उवधसिइ धम्मिप्रा

लेखनकान — स० १५०५

प्राप्ति स्थान— पाटण का मण्डार

(१२) उपदेग—स धि

विस्तार— भाषा १४

कर्त्ता— हमसारा

प्रत्त— उवम्रे स सधि निरमल भधि हमसारा इम रिसि करण
जो पढइ पढावइ सुह मणि भावइ वसुह सिद्धि वृद्धि सहए

(१३) चउरग सधि

विस्तार— कदवक ५

विषय— चार गरणो का बखन

विशेष विवरण — पिछमी तीन कृतियों का उल्लेख जन गुजर कविघो, भाग १
में पृष्ठ ७६ और ८३ पर हुआ है। नम्बर ११ और १२ की
भाषा अपेक्षाकृत प्रवाचीन है।

अवध शोत्तर राजस्थानी आदि भाषाओं के सधिकाव्य

अवध ७ की सधिकाव्यों की परंपरा को भाषा-कविता ने बालू रखा। हमारी
शोध से कीई ४० ऐसी रचनाओं का पता लगा है जिनकी नामावली प्राग की जाती है।
ये चौदहवीं स लेकर तनीमवीं शताब्दी तक की हैं।

चौदहवीं शताब्दी

१ मानद-सधि	गाथा ७५	विनयचंद्र	हमारे स प्रह में
२ कंगो गीतम सधि	गाथा ७०		"

सोत्रहवीं शताब्दी

३ मृगापुत्र सधि	---	कल्याणतिसक	१५५० सग० हमारे स प्रह में
४ नहन मणिहार सधि		चारुचंद्र	१५८७ ,
५ उदाह राजपि सधि		सधमभूति	१५९० सग० जैन गुर्जर कविघो
६ गजमुकुमाल सधि गाथा ७०		"	१५९० "
७ " "		मूलप्रभ	१५५३ "
८ घना सधि गाथा ६५		कल्याणतिसक	१५६० सग० हमारे स प्रह में

सत्रहवीं शताब्दी

९ सुखदुख विपाक सधि		धममेक	१६०४ जयपुर मण्टार
१० सुवाहु सधि		पुष्पगागर	१६०४ हमारे स प्रह में
११ विप्रस भूति सधि गाथा १०६		गुणप्रभमूरि	१६(०)८ अश्विन वशि ६ मुह जसलमेर में रचित

१२	भजु न माली स धि	नयरग	१६२१	जेसलमेर भण्डार
१३	जिनपालित—			
	जिनरक्षित स धि	कुशललाभ	१६२१	बृहद् ज्ञानभण्डार
१४	हरिकेशी स धि	कनकसोम	१६४०	"
१५	स मति स धि	गाथा १०६ गुणराज	१६३०	हमारे स ग्रह मे
१६	गजसुकमाल स धि	गाथा ३४ मूलावाचक	१६२४	जन गुजर ऋषियो
१७	चतस्ररण			
	प्रकीर्णक स धि गाथा ६१	चारित्रसिंह	१६३१	जसलमेर भण्डार
१८	भावना स धि	जयमोम	१६४६	हमारे स ग्रह म
१९	प्रनाथी स धि	विमल विनय	१६४७	,
२०	कयवन्ता स धि	गुणविनय	१६५१	बृहद् ज्ञान भण्डार
२१	नदिदेण स धि	दानविनय	१६६५	हमारे सग्रहमे
२२	मृगपुत्र स धि	सुमतिकल्लोल	१६६३	बृहद्ज्ञान भण्डार
२३	भानद स धि	श्रीसार	१६८४	जेसलमेर भण्डार
२४	केशी गीयम स धि	नयरग	१७ वी शताब्दी	हमारे स ग्रह म
२५	नमि स धि	गाथा ६६ विनय (समुद्र)		बृहद् ज्ञान भण्डार
२६	महागतक स धि	धमप्रबोध		हमारे स ग्रह म
				भण्डारहवी शताब्दी
२७	कडरीक			
	पुडरीक स धि	राजसार	१७०३	जेसलमेर भण्डार
२८	जयति स धि	अभयमोम	१७२१	शार हमारे स ग्रह मे
२९	भद्रनद स धि	राजलाभ	१७२२	श्री पूजजीवा स ग्रह
३०	प्रदेशी स धि	कनकविज्ञास	१७२५	हमारे स ग्रह म
३१	हरिकेशी म धि	सुमतिरण	१७२७	
३२	चित्रस भूति स धि	गाथा ३६ नयप्रमोद	१७२९	बृहद्ज्ञान भण्डार
३३	चित्रस भूति स धि	गाथा १०६ गुणप्रमसूरि	१७२९	जेसलमेर भण्डार
३४	इपुकार स धि	खेमो	१७४५	हमारे स ग्रह में
३५	प्रनाथी स धि	"	"	,

३६	यावज्वा स धि	श्रीदेव	१७४६	वृहद् ज्ञानभंडार
३७	भरत स धि	वे० पद्मचंद्र	१८ वीं शताब्दी	जेसळमेर भंडार
३८	मृगायुवस धि	जिन हृष	"	
		८-नीसवीं शताब्दी		
३९	प्रणेशी स धि	जेमल	१८१७	हमारे स ग्रह में
		अज्ञातकाल		
४०	ब दमवाला स धि			(जिनविजयजी के
४१	जिनपालित			पत्र में उल्लेख)
	जिनरक्षित स धि	मुनिशील		वृहद् ज्ञानभंडार
४२	सुबाहु स धि	मेषराज		लीवडी भंडार

बारहमासा सज्ञक रचनाए

ऋतुओं के सौन्दर्य को देखकर और उन पर गीतों का सज्जन साधुनिब साहित्य की देन नहीं अपितु त्रिदिव युग की प्राचीन परंपरा है। वेदों में प्रकृति का सुरम्य वर्णन मिलता है अथर्ववेद में तो अनेकों स्थानों पर इस प्रकार का वर्णन मिलता है जिनमें प्रकृति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। कई एक स्थानों पर तो छ ऋतुओं का भी उल्लेख हुआ है। कालांतर में इ ही ऋतुओं में अनेकों उत्सवों त्यौहारों का समावेश करके इनकी मानता को प्रबुद्ध रखा गया। उन ऋतुओं और त्यौहारों पर गीत बने, काव्यों का सज्जन हुआ।

जैसे तो प्रत्येक ऋतु दो माह की और वर्ष में १२ महीने होते हैं। इन बारह महीनों में प्रकृति बदलती रहती है। मानव और प्रकृति का अयो-याधय सम्बन्ध होने के कारण सयोग और वियोग में जैसे ये प्रकृति अथ परिवर्तन किस प्रकार लगता है इस भाव को अनेकों वर्णन साहित्य जगत में पद्य ऋतु वर्णन और बारहमासा वर्णन के रूप में विद्यमान हैं। डा० वासुदेवगण जी अग्रवाल ने अगविज्ञा की भूमिका में लिखा है कि इन अथ का १२वा पटल महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें छ और बारह महीनों के क्रम से प्रकृति में होने वाले वृक्ष वनस्पति पुष्प 'सस्य' नृत्य आदि का परिवर्तन विनाए गया है। उदाहरण के लिए फाल्गुन महीने के सम्बन्ध में कहा है — फाल्गुन मास में नर नारियों का मिथुन मिलकर उत्सव मनाते हैं और मुदित होते हैं। उन समय शीत हट जाता है और कुछ उष्णभाव आ जाता है। जिस समय आम मजरी निकलती और कोयल शरणा करती है उस समय गाने बजाने और हसी खुशी के साथ स्त्री पुरुष आपानक प्रयोग में मस्त होकर गाने लगते हैं झूमने लगते हैं। स्त्री पुरुषों के मिथुन मथुन कथा प्रयोगों में लगे हुए नाना भाँति से अपना मदन करते हैं उसका नाम फाल्गुन मास है। इन ४२ श्लोकों को अपने साहित्य का सबसे प्राचीन बारहमासा कहा जा सकता है (पृ० ४३ २४४) अग्रवाल जी ने अगविज्ञा की अथी शतिका की रचना का है। इससे बारहमासा वर्णन की परंपरा चौथी शताब्दी तक पहुँच जाती है।

श्रीयुक्त नामवरसिंह के 'हिन्दी के विकास में अथर्वण का योग' नामक ग्रंथ के

पृष्ठ २०३ में बारहमासों की परंपरा अथर्व ऋषि से नहीं मिलती, यह हिंदी की अपनी विशेषता है बतलाते हुए लिखा गया है —

अथर्व ऋषि को कई प्रवृत्तियाँ बगला, मराठी, गुजराती आदि साहित्यों में विशेष स्पष्ट हुईं और हिंदी में नहीं हुईं। इसी प्रकार हिंदी काव्य में भी अनेक बातें जो अथर्व ऋषि से अभी तक सम्बद्ध नहीं की जा सकी उदाहरण स्वरूप "बारहमासा"। अथर्व ऋषि में संस्कृत आदि की तरह षट् ऋतु बगुण तो मिलता है, पर बारहमासा नहीं मिलता। यह हिंदी की अपनी विशेषता है।

वास्तव में श्रीनामवरसिंहजी का कथन सही नहीं है। श्वेताम्बर अथर्व ऋषि साहित्य की ओर ध्यान न जान के बारणसी उनको इस सम्बन्ध की जानकारी न हो सकी। अथर्व ऋषि में ३३ वर्ष पूर्व सन् १९२० में सेट्रल लाइब्रेरी बडौदा से प्रकाशित व स्व० मोहनलाल दलाल द्वारा सम्पादित प्राचीन 'गुजरात काव्य संग्रह' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १०३ में 'नेमिनाथ 'अतुष्यदिका' सप्तक विनयचंद्रसूरि की जो रचना प्रकाशित हुई है व अस्तव में नेमिनाथ बारहमासा ही है। चौपाई छंद में रचे गये जाने के कारण उस रचना 'बारहमासा' न देकर 'अतुष्यदिका' रच दी गई है। इस रचना के प्रारम्भिक दो श्लोक दिए जा रहे हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा —

'मोहनसु दस षडालाभनु सुमरवि सामिउ सामस्यनु
सखि पति राजल छडि उत्तरिय बारमास मुणि जिम सज्जरिय ॥१॥
नेमि कुमह सुमरवि विरनारी, तिडि राजल कन कुनारी ॥
आकिली ॥

आखणि सरखणि बहुय मेहु, गज्जद विरहरि सिञ्झई देहु ।
विज्ज भववई सकसि जेव, नेमिहि विण्ण सहि सहियइ केय ॥२॥

इसके प्रारम्भिक पद्य में नेमिनाथ जी के बारहमास रचे जाने का उल्लेख है ही। दूसरे पद्य में श्रावण मास में वर्षा का वर्णन दिया गया है। इस रचना के कुल ४० पद्य हैं जिन में ३५ पद्यों तक में आषाढ मास का वर्णन राजपती के विरह रूप में पाया जाता है। सन् १९२६ में प्रकाशित स्व० मोहनलाल दलाल दत्त द्वारा 'जन गुजरात कविओं के प्रथम भाग' में इसका विवरण (आदि अंत) देते हुए इसे मुनि जिनविजय जी ने "जन श्वेताम्बर" कॉलेज स हैरल्ट में भी प्रकाशित किया था। इसने रचयिता विनयचंद्र सूरि, रतनसिंह सूरि

बारहमासा सज्ञक रचनाए

ऋतुओं के सौंदर्य को देखकर और उन पर गीतों का सज्जन आधुनिक साहित्य की देन नहीं अपितु त्रिदिव युग की प्राचीन परंपरा है। वेदों में प्रकृति का सुरम्य वर्णन मिलता है अथर्ववेद में तो अनेकों स्थानों पर इस प्रकार का वर्णन मिलता है जिनमें प्रकृति का बड़ा ही सुंदर विवरण हुआ है। कई एक स्थानों पर तो छ ऋतुओं का भी उल्लेख हुआ है। कालांतर में इ ही ऋतुओं में अनेकों उत्सवों स्वीकारों का समावेश करके इनकी मानता को अक्षुण्ण रखा गया। उन ऋतुओं और स्वीकारों पर गीत बने काव्योका सृजन हुआ।

धरती तो प्रत्येक ऋतु दो माह की और वर्ष में १२ महीने होते हैं। इन बारह महीनों में प्रकृति बदलती रहती है। मानव और प्रकृति का अयो-याध्यय सम्बन्ध होने के कारण सयोग और वियोग में उभे ये प्रकृति अथ परिवर्तन किस प्रकार लगत है इस भाव को अनेकों वर्णन साहित्य जगत में पंडित ऋतु वर्णन और बारहमासा वर्णन के रूप में विख्यात हैं। डा० रामकृष्णचरण जी अग्रवाल ने अगविज्ञा की भूमिका में लिखा है कि हम वर्ष का १२वा पटल महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें छ और बारह महीनों के क्रम में प्रकृति में होने वाले वृक्ष, वनस्पति, पुष्प 'सम्य' ऋतु आदि के परिवर्तन विनाए गये हैं। उदाहरण के लिए फाल्गुन महीने के सम्बन्ध में कहा है — फाल्गुन मास में नर नारियो के मिथुन मिलकर उत्सव मनाते हैं और मुदित होते हैं। उस समय वीत हट जाता है और कुछ वर्णनभाव आ जाता है। जिस समय आस्र मजरी निकलती और कोयल गान करती है उस समय गाने बजाने और हसा खुशी के साथ स्त्री पुरुष आपानक प्रमोद में मस्त होकर गाने लगते हैं भूमने लगते हैं। स्त्री पुरुषों के मिथुन मधुन कथा प्रमोदों में लगे हुए नाना भाँति से अपना मदन करते हैं उसका नाम फाल्गुन मास है। इन ४२ श्लोकों को अपने साहित्य का सबसे प्राचीन बारहमासा कहा जा सकता है (पृ २४३ २४४) अग्रवाल जी ने अगविज्ञा की चौथी शताब्दी की रचना माना है। इससे बारहमासा वर्णन की परंपरा चौथी शताब्दी तक पहुँच जाती है।

श्रीयुद्ध नामवरसिंह के हिंदी के विकास में अक्षर अक्षर का योग नामक ग्रन्थ :

पृष्ठ २०३ में बारहमासों की परंपरा अपभ्रंश से नहीं मिलती, यह हिंदी की अपनी विशेषता है बतलाते हुए लिखा गया है —

अपभ्रंश को कई प्रवृत्तियाँ बगला, मराठी, गुजराती आदि साहित्यों में विशेष स्फुट हुईं और हिंदी में नहीं हुईं। इसी प्रकार हिंदी नाट्य में भी अनेक बातें जो अपभ्रंश से प्रतीत सन्बद्ध नहीं की जा सकी उदाहरण स्वरूप 'बारहमासा'। अपभ्रंश में संस्कृत आदि की तरह षट् ऋतु वगण तो मिलता है, पर बारहमासा नहीं मिलता। यह हिंदी की अपनी विशेषता है।

वास्तव में श्रीनामवरसिंहजी का कथन सही नहीं है। दशैताम्बर अपभ्रंश साहित्य की ओर ध्यान न जान के कारण ही उनको इस सम्बन्ध की जानकारी न हो सकी। मयया प्राज्ञ ने ३३ वष पूर्व सन् १६२० में सेट्रल लाइब्रेरी बडौदा से प्रकाशित व स्व० मोहनलाल दलाल द्वारा सम्पादित प्राचीन 'गुजर काव्य सग्रह' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ८ में 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' सगक विनयच दसूरि की जो रचना प्रकाशित हुई है वह वास्तव में 'नेमिनाथ बारहमासा' ही है। चौपाई छंद में रचे गये जाने के कारण उसकी सजा 'बारहमासा' न देकर 'चतुष्पदिका' रच दी गई है। इस रचना के प्रारम्भिक दो पद्य नीचे दिए जा रहे हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा —

सोहयसु इव घटानायन्तु सुमरवि सामिड सामसव नु
सलि पति राजल खडि उत्तरिय बारमास सुणि जिम वजगरिय ॥१॥
नेमि सुमर सुमरवि गिरनारी, तिडि राजल कान कुमारी ॥
आकिली ॥

आवलि सरवलि कडुय मेहु, वजजइ बिरहरि सिवभई देहु ।
विजज भूववकई सकसि जेव, नेमिहि विणु सहि सहिपइ केव ॥२॥

इसके प्रारम्भिक पद्य में नेमिराज जी के बारहमासा रचे जाने का उल्लेख है ही। दूसरे पद्य में श्रावण मास में वर्षा का दखन दिया गया है। इस रचना के कुल ५० पद्य हैं जिन में ३५ पद्यों तक में चापाठ नाम का वणन राजमनी के बिरह रूप में पाया जाता है। सन् १६२६ में प्रकाशित स्व० माहनलाल दलीच दत्ताई ने जनगुजर कविओं के प्रथम भाग में इसका विवरण (आदि अंत) भेते हुए इसे मुनि जिनविजय जी ने 'जन दशैताम्बर' बौनफ स हेरल्ट में भी प्रकाशित किया था। इसने रचयिता विनयचंद्र सूरि, रतनसिंह सूरि

के शिष्य थे। इनके रचित कल्पसूत्र की टीका का समय वि० स० १३२५ है इसलिए इस रचना का समय भी १४ वीं शताब्दी का प्रारंभ ही समझना चाहिए।

इसके पश्चात् सन् १६३७ में गायदुवाड ओरियंटल सीरिज से प्रकाशित पटनस्य प्राच्य जन भाषाङ्गारीय ग्रंथ सूची का प्रथम भाग पटना के ताड पत्रीय प्रति परिचय के रूप में प्रकाशित हुआ। पंडित लालचंद भगवानदास गाधी ने इसको वर्तमान रूप दिया। इस ग्रंथ के पृष्ठ १७० में 'धम सूरि स्तुति' नामक छपन्न ग रचना की प्रारंभिक नवगाथाएँ और अंत की ४० ५० तक की १० गाथाएँ उद्धृत हैं। वास्तव में इस रचना का नाम 'वारह नावड' है जो कि रचना के अंत में लिखा मिलता है और कृति की पहली पंक्ति में भी जिसका निर्णय है। ५० सालचंद गाधी ने भी धम सूरि स्तुति के प्राग प्रकृत में (वारह नावड द्वादश मास छपन्न छ) गणों द्वारा स्पष्ट कर दिया है। अभी तक प्राप्त वारह मासा में छपन्न स की यह रचना सबसे प्रसिद्ध है।

इस रचना में जिन धम सूरि की स्तुति की गई है वे बड़े प्रभावक आचार्य थे। साकभरि क चौहान अजयपाल और विप्रहराज इनके भक्त थे। विप्रहराज ने ता इनके उपदेश से जन मन्दिर भी बनाया था। यह पाटन भंडार में उपयुक्त धमसूरि स्तुति से पूर्व रविप्रभ सूरि रचित धमदोष सूरि स्तुति प्रकाशित हुई है उससे स्पष्ट है। अतएव इस वारहनावड का रचनाकाल १३ वां शताब्दी का प्रारंभ सुनिश्चित है और इसमें वारहमासा सप्तक भाषा का जो भी परम्परा ८०० वर्ष पुरानी सिद्ध हो जाती है।

जन कवियों के रचित गताधिक वारहमास मेरे संग्रह में सुरक्षित हैं। इन वारह मासों का स्वर्गीय मोहनसाल दलीप देसाई ने उड़ी तगन क साथ संग्रह किया था। इनमें तीन चौपाई वारहमासे ती २२ वें तीथकर नेमीनाथ और राजीमति स सम्बन्धित है। दो ऋषभ देव एक पाशवनाथ पाच स्थूनिभन् शो अय जनाचार्य एक वारह ऋष एक मूलिबाई से सम्बन्धित और कुछ सामा य वारहमासों के वखन क रूप में हैं। उनमें १२ महीने में मे किसी कवि ने चत्र से किसी ने आपात् थावण में किसी ने वज्राण भिगसर से तो किसी ने कार्तिक और किसी ने फाल्गुन से वखन प्रारंभ किया है। अर्थात् भिन्न भिन्न कवियों ने अपनी रचि के अनुसार किसी ने फाल्गुन से वखन प्रारंभ कर दिया है। ये वारहमासे १३ गाथाओं से लगाकर ८० गणों तक क विस्तृत वाच्य है।

जन कवियों ने वारहमासे १३ वीं गताब्दी से प्रारंभ होकर अत्यंत शताब्दी के मिनने है। १३ वीं शौहदवी के २ पद्रहवी के २ और सोनहरी ने चार वारहमासे

मिल चुके हैं। १७ वीं शताब्दी से इनकी संख्या १८ वीं और १९ वीं शताब्दी तक बराबर बढ़ती जाती है। बीसवीं शताब्दी में यह धारा मद घटकर पट जाती है पर समाप्त नहीं होती।

१३ वीं और १४ वीं के प्रारम्भ के दो जन बारहमासे का विवरण उपर दिया गया है। इनके पश्चात् १४ वीं के उत्तरार्ध का एक "नेमिनाथ चारहमासा रासो" प्रचलित प्राप्त हुआ है जिसका रचयिता पन्हुणु नामक कोई कवि है। इसके पौन सात पद्य ही मिले हैं। जिनमें श्रावण स पोष महीने तक का वर्णन आता है। इसका एक पद्य नीचे दिया जा रहा है —

वासमीर मुख भङ्ग देवी चाएसरि पाहणु पणमेवी ।
 पदमावतिय चवकेसरि नमिउ, अशिका देवी हडवीनवउ ।
 चरिउ पयासउ नमि जिए केउ, कबिसु गुण घम्म निवासो ।
 जिय राइमइ विप्रोगु भयो बारहमास पयासउ रासो ॥

इस बारहमासे की प्रति १५ वीं शताब्दी के प्रारम्भ की लिखी हुई होने से मैं इसका रचना समय १४ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है। संभव है वह उनमें और भी पहले का हो।

१५ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कवि हीरानन्द सूरि का 'सुलिभद्र बारहमास ३० पद्यों का है जिसमें सुलिभद्र के निरहम बौद्धों को अनुताप हुआ उसका वर्णन मांगीय नाम में किया गया है। तीसरे पद्य में २६ वें तक १२ महीनों का वर्णन है। प्रारम्भिक दो पद्य इस प्रकार हैं —

सरमति २ सामणि समरीइए । वामीय २ स गुण पमाउकि ।
 गाइ २ सुसोम सोहामीणए । सुनिभद्र २ मुनिवर राउकि ।
 सरमति सामणि समरीइए ॥१॥

समरीयद् सरमति सगुण आनि । सुनिभद्र वर्षालीय ।
 सिगडाल सा छिन्नदेव नन्दन पाइलीपुर जालीयड ।
 वरस बार कोटि चारई, वेसिसु विलसी करो ।
 मास माणितर सजम लीयड कोम हीयडइ महवरी ॥२॥

इही हीरानन्द सूरि का नेमिनाथ बारहमासा मिलता है ।

१५ वीं के अंत या १६ वीं के प्रारंभ का एक 'नेमिनाथकाव्य' के नाम से बारहमासा मिलता है । जिसमें आषाढ से जेठ तक के विरह का वर्णन है । स० १५३५ लिखित इसकी एक प्रति स्व० नेसाई को मिली थी, जिमसे भक्त बरक जन युग' ४५ पृष्ठ ४७५ में उल्लेख करने इमे प्रकाशित किया था । उसके अनुसार इस रचयिता 'दू गर' कवि हैं और पद्य मस्या २६ है । हमारे समय में स० १५८६ की लिखित इसी बारहमासा की प्रति है । इसमें पद्यों की संख्या २२ और रचयिता का नाम वाह लिया है । इसके तीन प्रारंभिक पद्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं —

महे तोरणि घातभ भविला यादव कुल करवधव ।

महे पशुव धरि रथ वालिउ वह दसि हँउहु विछ द ॥१॥

महे निसी अघारि एकली मधुरे वासर मोर ।

विरह सतावधि पापियो बारभ हिई कठोर ॥२॥

महे धरि आषाढ उनपु गौरि नमखे नेह ।

गौड पात्रिमुन पापिव छानी वरसि न मेह ॥३॥

बारहमासा काव्य एक तरह में लोक काव्य है । जनता में इसका तुल्य प्रचार रहा । जनेतर काव्यों में भी अनेक बारहमास बनाए पर उनमें जन विद्वानों की तरह लिखने और सभ्यता की परिपाटी न रहने के कारण उनकी रचनाएँ बहुत कम सुरक्षित रह सकीं । प्राचीन बारहमास तो जनेतर कवियों के मिलन ही नहीं हैं । जनेतर कवियों के राजस्थानी गुजराती और हिन्दी तीनों भाषाओं में साहित्य की मुझे जो कुछ जानकारी है उनके आघात पर मेरा विचार है कि १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही बारहमासे मिलते हैं । जहाँ तक हिन्दी साहित्य का प्रश्न है सम्भवतः जायसी के पहिले किसी के बारहमासों का बणन प्राप्त नहीं है । इसी प्रकार राजस्थानी जनेतर साहित्य में भी यथास्मरण 'माधवानल कामकदला' काव्य में सर्वप्रथम बारह महीनों का विरहबणन मिलता है । ये शीनों पद्य १६ वीं के उत्तरार्ध में हैं । स्वतंत्र बारहमासों की उपनिधि (जनेतर कवियों के रचित) १७ वीं शताब्दी में ही होती है । इन सब बारहमासों का प्रधान विषय नायिका द्वारा अपने पति के वियोग में बारह महीनों में जो विरह दुःख का अनुभव होता है उसी का व्यक्तिकरण है । कुछ काव्य (सतो आदि में) इसके अपवात् में भी रचे जा सकते हैं ।

सतो के रचित बारहमासो के संवध मे सन साहित्य के अध्ययनशील विद्वान परशुराम चतुर्वेदी ने अपने सन काय नामक ग्रथ की भूमिका में महत्वपूर्ण विवरण दिए हैं।

जसा मैंने ऊपर कहा है सोलहवी के उत्तरार्ध से हिंदी मे बारहमासो का वर्णन मिलने लगता है और स्वतंत्र रूप से बारमासा का य १७ वी स मिलते हैं। हिंदी के प्राप्त बारहमासो मे स करीब २० अर्थात् बारहमासो का विवरण मैंने अपने राजस्थान में हस्त लिखित ग्रथा की खोज क चतुर्थ भाग मे दिया है जो प्रकाशित हो चुका है। इनमे कुछ जन कवियों के हैं, कुछ जनतर हिंदू और कुछ मुसलमान कवियों के भी हैं। पात हिंदी बारहमासो मे गग कवि का बारहमासा स्वतंत्र हिंदी बारहमासो मे सबसे प्राचीन है। गग कवि साम्राज्य प्रकथर का माय कवि था। इसका यह बारहमासा अर्थात् संस्कृत पुस्तकालय की कपी लिपी में कृतुवन का मुगावती की प्रति क अंत मे लिखा मिता है। इसके पश्चात् केशवदास सुंदर, रूप, बिहारी, वृद्ध भान आदि अनेक कवियों के बारहमासे मिलते हैं, पर ये २५ ३० पद्या मे बडे नहीं है जबकि मुसलमान कवियों मे तुस्लासाह, हामद काजी महम्मद पुरमही, अहमद खरासाह मिनमत आदि क बारहमासो में कुछ १२२ पद्यों तक के बडे बारहमासे भी मिले हैं। जन कवियों के हिंदी मे रचित बारहमासों में १८ वी शताब्दी के मुकवि विनयचंद्र का नेमिनाथ बारहमासा बहुत ही सुंदर है इसे करीब २० वर्ष पूर्व हमने श्वेताम्बर जन पत्र मे प्रकाशित किया था। इसमें भाषा का प्रवाह और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बहुत ही सजीव बन पाया है। जिनहथ लक्ष्मीवर्द्धन केशवदाम आदि जन कवि भी १७ वी शताब्दी के हैं जिनके बारहमासे मिले हैं। जन कवियों में श्वेताम्बर कविया की रचनाएँ राजस्थानी या गुजराती मे अधिक हैं इसलिये श्वेताम्बर कवियों के हिंदी बारहमासे कम मिले हैं। दिगम्बर कवियों ने हिंदी भाषा को अधिक प्रपनया है क्योंकि उन संप्रदाय का प्रचार केन्द्र हिंदी भाषा भाषी क्षेत्र मे अधिक रहा है जब कि श्वेताम्बर संप्रदाय का प्रचार राजस्थान और गुजरात मे अधिक है। दिगम्बर कवियों के हिंदी बारहमासो मे स कुछ जिनवाणी संग्रह आदि में प्रकाशित हो चुके है पर अभी उनका प्रयत्न पूर्वक मग्न किया जाना आवश्यक है जिसे उनकी सरया आदि का ठीक पता लग सके।

इही हीरानन्द सूरि का नेमिनाथ बारहमासा मिलता है ।

१५ वीं के अंत या १६ वीं के प्रारंभ का एक नेमिनाथकाग के नाम से बारहमासा मिला है । जिसमें आधाण से जेठ तक के विरह का वर्णन है । स० १५२५ लिखित इसकी एक प्रति स्व० नेमाई को मिली थी, जिसमें नवल करक जन युग' वर्ष ५ पृष्ठ ४७५ में उद्धरण इसे प्रकाशित किया था । उसके अनुसार इस रचयिता 'दू गरी' कवि हैं और पद्य संख्या २६ है । हमारे संग्रह में स० १५८६ की लिखित इसी बारहमासा की प्रति है । इसमें पद्यों की संख्या २२ और रचयिता का नाम का ह दिया है । इसके तीन प्रारंभिक पद्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं —

अहे तोरणि घालम अचिरा यादव कुल करवचद ।
 अहे पशुव बलि रथ वालिठ वह बलि हुंठहु विछ द ॥१॥
 अहे निसी अघारि एकली मधुरे वासर मोर ।
 विरह सतावधि पापियो, शानभ हिई कठोर ॥२॥
 अहे धरि आवाठ उनपु गौरि नयसे नह ।
 गौड गाजियुन पापिब ध्यानो वरसि न मह ॥३॥

बारहमासा काव्य एक तरह का लोक काव्य है । जनता में इसका ज़ब प्रचार रहा । जनेतर कवियों ने भी अनेक बारहमासे बनाए पर उनमें जन विद्वानों की तरह लिखने और संरक्षण की परिपाटी न रहने के कारण उनकी रचनाएँ बहुत कम सुरक्षित रह सकी । प्राचीन बारहमासे तो जनेतर कवियों के मिलते ही नहीं हैं । जनेतर कवियों के राजस्थानी गुजराती और हिंदी तीनों भाषाओं के साहित्य की मुझे जो कुछ जानकारी है उसमें आधाण पर मेरा विचार है कि १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही बारहमासे मिलते हैं । जहाँ तक हिंदी साहित्य का प्रश्न है समस्त जायसी के पहिले किसी के बारहमासों का वर्णन प्राप्त नहीं है । इसी प्रकार राजस्थानी जनेतर साहित्य में भी यथास्मरण 'माधवानल कामकदला' का य म मवप्रथम बारह महीनों का विरहवर्णन मिलता है । ये दोनों प्रथम १६ वीं के उत्तरार्द्ध के हैं । स्वतंत्र बारहमासों की उपलब्धि (जनेतर कवियों के रचित) १७ वीं शताब्दी से ही होती है । इन सब बारहमासों का प्रधान विषय नायिका द्वारा अपने पति के वियोग में बारह महीनों में जो विरह दुःख का अनुभव होता है उसी का व्यक्तिकरण है । कुछ काव्य (सती आदि के) इसके अववाद में भी रच जा सकते हैं ।

सतों के रचित बारहमासों के संवत्सरे में सत साहित्य के अध्ययनशील विद्वान परशुराम चतुर्वेदी ने अपने सत का य नामक ग्रन्थ की भूमिका में महत्वपूर्ण विवरण दिए हैं।

जसा मैंने ऊपर कहा है सोलहवीं के उत्तरार्द्ध से हिंदी में बारहमासों का वर्णन मिलने लगता है और स्वतंत्र रूप में बारहमासों का य १७ वीं से मिलते हैं। हिन्दी के प्रात बारहमासों में स करीब २० अर्थात् बारहमासों का विवरण मैंने अपने राजस्थान में हस्त लिखित प्रया की खोज के चतुर्थ भाग में दिया है जो प्रकाशित हो चुका है। इनमें कुछ जन कवियों के हैं, कुछ जनेतर हिंदू और कुछ मुसलमान कवियों के भी हैं। ज्ञात हिन्दी बारहमासों में गग कवि का बारहमासों स्वतंत्र हिंदी बारहमासों में सबसे प्राचीन है। गग कवि साभ्रात प्रकथर का माय कवि था। इसका यह बारहमासों अनूप संस्कृत पुस्तकालय की कपी लिपी में कुतुबन की मृगावती की प्रति के अंत में लिखा मिला है। इसके पश्चात् केशवदास सुंदर, रूप, बिहारी, वृद्ध मान आदि अनेक कवियों के बारहमासों मिलते हैं, पर वे २५-३० पद्यों में बड़े नहीं हैं जबकि मुसलमान कवियों में बुल्लासाह, हामद काजी महम्मद, पुरमही, महम्मद खरामाह मिनमत आदि के बारहमासों में कुछ १२२ पद्यों तक के बड़े बारहमासों भी मिले हैं। जन कवियों के हिन्दी में रचित बारहमासों में १८ वीं शताब्दी के मुकवि विनयचंद्र का नेमिनाथ बारहमासों बहुत ही सुंदर है इसे करीब २० वर्ष पूर्व हमने श्वेताम्बर जन पत्र में प्रकाशित किया था। इसमें भाषा का प्रवाह और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बहुत ही सजीव बन पाया है। जिनहय लक्ष्मीवदन केशवदाम आदि जन कवि भी १७ वीं शती के हैं जिनके बारहमासों मिले हैं। जन कवियों में श्वेताम्बर कवियों की रचनाएँ राजस्थानी या गुजराती में अधिक हैं इनमें श्वेताम्बर कवियों के हिन्दी बारहमासों कम मिले हैं। दिगम्बर कवियों ने हिन्दी भाषा को अधिक प्रपनाया है क्योंकि उन संप्रदाय का प्रचार केन्द्र हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र में अधिक रहा है, जब कि श्वेताम्बर संप्रदाय का प्रचार राजस्थान और गुजरात में अधिक है। दिगम्बर कवियों के हिन्दी बारहमासों में से कुछ जिनवाणी संग्रह आदि में प्रकाशित हो चुके हैं पर अभी उनका प्रयत्न पूर्वक संग्रह किया जाना आवश्यक है जिससे उनकी सख्या आदि का ठीक पता लग सके।

फागु संज्ञक काव्य

आचार्य हेमचंद्र की दशमीनाममाला में वसंतोत्सव के लिये 'फागु' शब्द का प्रयोग पाया जाता है आ बोलचाल की भाषा में फागु या फाग के नाम से प्रसिद्ध है। वसंतोत्सव सम्बन्धी ऋतु के अभिनव उल्लास को प्रकट करने वाले विशिष्ट वणनारमक, गीत सौष्ठव अथ-नामीय यमक और अनुप्रास आदि अलंकारों से सुशोभित विशिष्ट गेय रचनाओं की सजा 'फागु' या 'फाग' ही हुई मिलती है। वसंत ऋतु का प्रधान उत्सव फागुन महीने में होता है। उस समय नर नारी मिलकर परस्पर में एक दूसरे पर प्रवीर गुलाम आदि डानते हैं और जन की विचकारियों में क्रीडा करते हैं, उसे फाग मेलना कहते हैं। वसंत ऋतु के उल्लास का जितना कुछ वणन हो या उन दिनों में जो रचना गाई जाती हो उन रचनाओं की सजा फागु ही गई है। इसकी परम्परा तो काफी प्राचीन है पर स्वतंत्र कार्यों के रूप में अभी १४ वीं शताब्दी के पूर्व की कोई रचना नहीं मिली। प्रयागधि उपलब्ध रचनाओं में सबसे प्राचीन जिनचन्द्रसूरि फागु है इसकी एकमात्र प्रति जमनामेर भण्डार से उपलब्ध हुई है पर उसका मूल भाग नष्टित था। यह रचना २५ पद्या की है पर छंद से २० पद्य के अंग वाला पद्य नहीं मिला। जिन प्रदीपसूरि के पदप्रथम जिनचन्द्रसूरि खरतगच्छ के आचार्य थे। उनका समय म० १३४१ से से १३७६ तक का है। अतः यह रचना इसी बीच की है। इसमें आचार्य श्री का वणन विशेष नहीं है। वसंत वणन ही प्रधान है।

अरे शयडड तपियड येन्वि न सहण रतिपति नाहु ।
 अरे बोत्तावड वमतु जसव्वह रितुहु राउ ॥
 अरे आगए तुह बलि जीतधो गोरह करउ बालमु ।
 अरे इसइ वचनु निसुखेविशु, आणयउ रतिय वस्तु ॥२॥
 अरे पाडल बालउ वेउल, सवत्री जाइ मुचकुडु ।
 अरे कडु करणी राग चपक विहसिय केवडि विडु ॥

धरे कमलहि कुमुदिहि सोहिया, मानस जवलि तलाय ।
 धरे सोयल कोमला सुरहिया बाइ दक्खणा वाय ॥३॥
 ररे पुरि पुरि भाबुला मउरिया कोइल हरखिय देह ।
 धरे तहि हूए दुहकए बोलए भयए हवेरिय तेह ॥
 धरे इसइ बसतिहि हूय ए भाघुसवे तियमात्र ।
 धरे अचेतन मे पाबिया, ति हु तणी जुगलिय बाय ॥४॥

यह गद्य रचना है, इसका उल्लेख अन्त के पद्य इस प्रकार किया है—

धीजिन अइ सूरि जाविहि, गायहि जे अति भावि ।
 ते बाउस अच पुरसला, बिससहि सिध सुह सावि ॥२५॥

इसकी परवर्ती रचना स्पृशिमद्र फामु है । जिसके रचयिता खरतर गच्छीय जिनपद्य सूरि हैं । जिनका समय स ० १३८६ स १४०० तक का है । इसने प्रारम्भ में स्पृशिमद्र मुनि का वएण फामुबड में किये जानका उल्लेख होनेसे इन रचनाओं में विशिष्ट प्रकार की सूचना मिलती है । शब्द "फामुबड" किमी छत्र और रचना के विशेष प्रकार के लिये लड प्रतीत होता है । इसमें ऐसी रचनाओं की प्राचीन परम्परा का आभास मिलना है । अर्थात् इस समय तक इस छद या शैली की अनेक रचनाएँ बन चुकी थीं । कवि ने इनका अनुसरण किया है । इसमें वसत का वएण न होकर वर्पा का वएण बडा ही सु दर है । जिसका उद्धरण मैं अपने 'राजस्थानी साहित्य में वर्पा वएण लेख में द चुका हूँ । स्पृशिमद्र जनाचाय थे । मुनि दीक्षा लने के पूर्व कोणा वध्या के गृहा के १२ वष २६ चुके थे । चतुर्मास वरन के लिए वे गुरुजी से घाणा लेकर कोणा के भदन में आते हैं और उनकी चित्रशात्रा में ठहरते हैं । इसी समय वष वरसना शुरू होता है । इस प्रसंग से कवि ने वर्पा का वएण करके फिर कोणा के गृ गार करने का विस्तृत वएण किया है ।

यह रचना गेय होने के साथ साथ नृत्य के साधनेली जाती थी । इसका वएण कवि ने अंत के पद्य में कर दिया है—

खरतरगच्छी जिनपदमसूरि, किय फामु रमेवठ ।

सेला नावइ अत्रमासि रनिहि गावेवठ ॥

इसी समय की अन्य रचना मनपारी गच्छीय राजगधर सूरि रचित नामनाय

फागु है। यह भी २७ पद्यों की है। श्रीर 'फागुवधि' शली म रचे जाने का उल्लेख है। इसमें २२ वें तीर्थकर नमिनाथ न वसत ऋतु घाने पर कृष्ण की रानियो के साथ जन फ्रीडा आदि की उसका बखान है। अत में फागुरमिज्ज १०० स पाया जाता है। यह रचना भी नृत्य के साथ गाई जाती थी। उपयुक्त तीनों रचनाएँ १४ वीं शताब्दी की हैं। काव्य का दृष्टि से भी बहुत सुंदर हैं। अब १६ वीं शताब्दी की रचनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। इन रचनाओं की एक निशिष्टता विशेषरूप में उल्लेख योग्य है कि इनमें शब्दालंकार के साथ समर व अनुशास की छत्रा लक्ष्मि हो बनती है—

धरुहिलवाडड पाटण पाटण नगर जे बाड,

शोसइ जिहा श्रीमजिणहर, मणहर सपव बाड

(अरे म० काव्यसचय देवरेनसूरिकाग पृ १५१)

महे पचवरम सगई लालीम पालीम अति सुकुमार,

सातइ उकठव बहु कीड सु कीड सुत नेसाण ॥१४॥

(उपयुक्त हेमचिन्मसूरिकाग पृ १६७)

पहिलु सरसति अरचीसु रचीसु वसत विलास

बीण घरइ करि दाहिए वाहिए हसलु जास ॥१॥

पहुतीय तिहुली हिय रति वरति पहुती वसत,

वहविसि परसइ परिमल, निरमल व्या नम अत ॥१॥

(प्रा० गू० काव्य 'वसत विलास पृ० १५)

घारिठ मोह मतगज, गजपति जग अथतस

अनु जस त्रिभुवनि धवलिय, विमलीय मादव वस ।

(आत्मानंद जम गना०री शमारक अरु नेभीश्वरचरित फागवध पृ०४७)

भाविय भास वसतक सत वरइ उस्ताह,

मलयानिल वहि वायउ आयउ काम गिदाह ॥१७॥

(फागुकाव्य' नतपि)

समरवि त्रिभुवन सामणिए कामणिए तिरिसिएपाक,

कवियण वयणिया वरसइ सरसइ अमिउ अवार ॥१॥

(जीरापन्ती पावशनाथ फागु पृ० ६७)

यह गनी फागु मन्वन्धी मनी रचनाया में नही अपनाई गई है। इस शती की प्राथमिक मन्वन्धी फागु म जी यह नहीं है और पिछली गती की अय फागों म भी सवत्र दम शनी को नहीं अपनाया गया।

१५ वी शताब्दी की फागु सगक करीब १० रचनाएँ मिलती हैं। जो काव्य का दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसी गताब्दी म धनुष्याम का प्रधानता प्रविष्ट हुई और माण्डव्य मुन्दर और का ११ पद्यों जिनका बड़ा काव्य भी बना। १६ वी शताब्दी के प्रारम्भ में रत्नमण्डन गरिण न तो रत्नसागर नवरसनेमि फाग' तीन खण्डों में ११५ पद्यों का बनाया। उपन्यास फागु काव्यों में यह सबसे बड़ी और विविष्ट रचना है। इसमें सस्कृत श्लोक भी प्रचुरता म दिये हैं। 'वसन्त विनास' काव्य ता गुजरात में बहुत प्रसिद्ध है। वह भी म० १५० के लगभग की रचना है। १६ वी शताब्दी में १५ फागु काव्य बन और १७ वी में भी लगभग इतने ही। १८ वी के प्रारम्भ म रचित राजहृष का नेमिनाथफाग फाग सगक का गे म अतिम रचना है। बसे लघु रचना के रूप म महागन्द रचित सजय फाग और लमिफाग स० १८०५ के लगभग की है। पर ये एक तरह स होली गीत ही समझिए।

ममतोरमव म फागु काव्यों की रचना के बाद 'धमान' काव्यों का भी निर्माण होन मगा। विगवर सम्प्रदाय में अपभ्रंश म डमाल पार्ई जानी है जिसका समय १६ वी शताब्दी का होगा। पर देवतावर ममाज म धमान सगक रचनाएँ १७ वी के प्रारम्भ से ही अधिक मिलती हैं। १८ वी शताब्दी में इनका भी अस्तकाल आ जाता है और इसी शताब्दी स होरी सगक छाटे छोट गीत विनोय रूप से रचे जान गये। इस समय में हिन्दी भाषा का प्रचार इतनाकर जन कवियों में कुछ अधिक रूप म हुआ मगा। बस गय पद तो १७ वी शताब्दी स अधिकतर हिन्दी में ही रचे मिलते हैं। होरी सगक गेय पद्यों की भाषा हिन्दी प्रधान है।

फागु और धमाल की छंद रागिनी एवं नती म अंतर होगा, पर १७ वी शताब्दी में अब धमाल सगक रचनाओं का प्राचुर्य हुआ ता दोनों नाम एक ही रचना के लिये प्रयुक्त किए जाने लगे। जैस— मालदेव कं मूलभद्र धमाल की वही मूलभद्र फाग भी लिखा है।

'फा' काव्य मूल रूप से गेय एवं हृदय काव्य थे। पर १५ १६ वी शताब्दी में जब अधिक पद्य बाल वट काव्य विविष्ट शती में लिखे जाने लगे ता जनसाधारण स

वे कुछ दूर पढ़ने लगे । गद्य रूप तो गढ़ा होगा, पर उसका साथ नृत्य का सम्बन्ध था वह इस समय कम हो गया लगता है । घमान काय छाट और बड़े दोनों प्रकार के मिलते हैं । छोटे में २ और बड़े में १०७ तक कवच वाला मिलते हैं । हारी सतक पर तो पाच सात पद्यों का हो चके गये हैं । जन कवियों को समय-समय पर परिवर्तन करना पडा इसका प्रधान कारण उनका लाकरुचि का उद्यम अपनी रचनाओं का मूल बिटाना है । ज्यों ज्यों लोक रुचि बलती गयी व अपनी शक्ति बदलते गये । फिर भी उनकी विविधता सब समय कायम रही । फिर भाव लोक रुचि का गाय बह नहीं गयी । फागु का यों में शृंगार रस का परिपाक नजर आना है पर उद्वेगिणी भीमा का उल्लसन नहीं किया । और पाच एक चुने कि साधकर आचार्य आदि महापुरुषों में उन रचनाओं सम्बन्ध प्रविष्टि रह्ये । जन पूणत बहारा होत है । अतः अधिक शृंगारिक बणन करना उनके आचार्य विरुद्ध भा है । उ होंन अन्धोदता की आर जान वाली लोक रुचि को घम, भक्ति एव पान की आर प्रवाहित किया । उसक लिए गुलाब पिचकारी आदि सारे उपकरण बराय एव पान क रूपक बन गये ।

सजल सजन मनी निनिहो खेलाए समकित रयास ।

जान सुगन गाव गुनीरो, बियाइत सरस खुदयास ॥१॥

खेलो सत हसत बसत मरी, ग्रहो मेदा सजनः राय सुकांग रमत रब ॥२॥

य रचनाएँ साधारण जन जनता के लिए ही बनायी हैं । मुनियों ने तो बना कर उन्हें आचर्यो के हाथों में सौंप दी । आचर्यों ने ही उन्हें गाया, बजाया अभिनय किया । उसका रस सब लाभ साधारण जनता ने ही उठाया । अतः जनसाधारण के आनन्दोत्साह प्रकट कराने में इनका बड़ा हाथ रहा है । इस दृष्टि में विष्ट माहित्य होने पर भी इनकी गणना लोक साहित्य में भी की जा सकती है । वह निमाताओं के काम की उन्नी नहीं । जनता के हृदय में आदानित करना ही उनका उद्देश्य रहा है ।

फागु काव्य जन रचन ओ की सूची

१५ वीं गताली

(१) जिनचन्द मूरि फागु गा० २५

अभय जन प्र चालय

(२) मूलभद्र फागु गा० २७— जिनपच मूरि कर्ता

प्र० प्राचीन गु० काव्य मण्ड

१५ वी शताब्दी

- * १ नमिनाथ फागु गा० २१— राजशेखर सूरि स० १८०५ लगभग प्र० सा० गु०
- २ स्थूलमद्र फागु— हलराज स० १४०६
- * ३ नेमिनाथ फागु— गा० १५ ममघर स० १४३० ॥ पूर्व— धर्मय जैन प्रयालय
- * ४ जम्बुवामी फागु— गा० ३ स० १४३० लगभग प्र० जन० सा० प्र०
- * ५ जीरावदत्ता पाश्वनाथ फागु गाथा ३० मेरुनन्त स० १४३२ पाश्वनाथ ।
- ६ नेमिनाथ फागु— जयसोम सूरि स० १८०२ से पूर्व
- ७ नेमिनाथ फागु बह चरित गा० ६१ माणव्य सु दर सूरि स० १४७८ प्र० आत्मानन्द
गताब्दी स्मारक ग्रंथ
- ८ स्थूलमद्र फागु— सोम सुंदर सूरि स० १८८१
- ९ फागु— स० १४६५
- १० देवदत्त सूरि फागु गा० ६५ स० १४६९ प्र० जन ऐ० ग० स बंध
- ११ कीर्तिरत्न सूरि फागु ए० ज० का० स०
- * १२ भरतेश्वर चक्रवर्ती फागु गा० २० स० १४६७ से पूर्व धर्मय जन प्रयालय
- * १३ पुरपोत्तम पाष पाण्डव फागु गा० २४ स० १४६७ से पूर्व धर्मय जैन प्रयालय
- १४ धर्मत विलास— स्वतंत्र ग्रंथ
- * १५ नेमिनाथ फागु प्रथम— कृष्णपीम जयसिंह सूरि प्राचीन फागु स ग्रंथ
- * १६ नेमिनाथ फागु द्वितीय — " " " " "
- १७ नेमिेश्वर चरित फागु— प्राचीन फागु स ग्रंथ

१६ वी शताब्दी

- १ नेमिनाथ फागु— (सुरगा विधान) धनदेव गणि स० १५०२
- * २ नारि निरास फागु— (रवमागर नव रस) रत्नमण्डल स० १५१७ से पूर्व प्रकाशित
- * ३ नेमी फागु— गा० ११५ रत्नमण्डल स० १५१७ से पूर्व प्रकाशित
- * ४ नेमिनाथ फागु— पद्य— स० १५१६
- ५ नेमिनाथ फागु— गा० २१ दूर स० १५३५ से पूर्व
- ६ नेमिनाथ फागु— गा० २२ काह स० १५३५ से पूर्व
- * ७ नेमिनाथ फागु गा० ५ समरा स० १५४६ से पूर्व

८ हृषीकेश मूरि फाग— हृषीकेश स० १५५४

९ अमररत्न मूरि फाग— गा० ९ अमय जन ग्रन्थालय

१० हेमरत्नमूरि फाग— गा० १० विनय चूहा अमय जन ग्रन्थालय

११ पादवनाय फागु— गा० १५ समयध्वज १५५८ स पूव

१२ फनीषो पादवनाय फागु— गा० २५ खेमराज

१३ वसंत फागु गा० १६ गुणवत्त मूरि प्रकाशित

१४ वसंत मृगार फागु— अम्बानात माह क पास

१५ गुरावली फागु— खगहम प्र० ए० ज० का० न०

१६ नैमि जिन फागु— अत्रसीमाय

१७ रावण पादवनाय फागु गा० २१ हृष कुजर अमय जन सग्रहालय

१८ सुरगानिध नमि फाग— अनन्व गणित वृत्त प्रकाशित

१९ वसंत त्रिनाम फागु प्रकाशित

२० राणपुरमदन चतुमु न आदिनाम फाग प्रकाशित

२१ स्थूलभद्र फाग— अमरनाथ प्रकाशित

२२ वाहण फाग गा० ११ स १५८७ लीबडी म प्रतिनिधि अमय

१७ वा गताब्दी

१ नैमि फागु— गा० ४० जयव न मूरि

२ स्थूलभद्र प्रेम विनाय फागु— गा० २९ जयवत्त मूरि अमय जन सग्रहालय

३ स्थूलभद्र फागु गा १८७ मातन्व स १६१२

४ नैमि फागु— गा ३० वनवनाम स १६३० रणयमौर

५ नैमि फागु— गा ४२ जयनिवान

६ नैमि फागु— लज्जराज

७ नैमि फागु— विजयच

८ नैमिफाग वध चरित गा ८० यजसागर मूरि गिष्य १६४५ स ०

९ नैमि राजल फागु - मन्मामरु न १६७३ क नमय

१० नैमिफागु— गुण विजय स १६८१

११ वमल वा मदन— गुण विजय

१२ नेमि फागु— गा १३ कनक कीर्ति

१३ हीर विजय सूरि फागु—

०१४ वामुपूज्य मनोरम फागु— कल्याण स १६८६ धराद

१५ नेमी फागु गा ३३— जिन समुद्र स १६९७ माचौर

१६ विरह देगातुरी फागु— गा ४० राजकवि

१७ नमि वसंत फागु— विद्याभूषण (दि०)

१८ आदिश्वर फागु— पान भूषण (दि०)

०१९ धनमूर्ति गृह फागु— बभनगोस्वर

०२० मंगलकलश फागु— बाबक कनक सोम स १६४९^१

०२१ जिन हंसगुरु नवरत्न फागु— आगम मारिचक

१८ वी शताब्दी

१ नेमि फागु— गा २८ राजहय

२ फागुणमास धरुण गा ९ निडि विलास— स १७६३

० ३ आद्यात्म फागु— लक्ष्मीवल्लभ प्रकाशित

१९ वी शताब्दी

१ स जय फागु— महानद स ० १८०५

२ नमि फागु— मगनद

जनतर फागु काय

० १ नारायण फागु— १४९५ के आस पास

० २ मोहिनी फागु— १६ वी शताब्दी

० ३ चुपई फागु— १६ वी शताब्दी

४ फागुकाव्य— बतुमुज— १६ वी शताब्दी

० ५ अनात कवि कृत फागु— १६ वी शताब्दी

० ६ बाहणू फागु— १६ वी शताब्दी

० ७ विरह देसाउरी फागु— १६ वी शताब्दी

० ८ अमर गीता फागु— स १६२२

*निर्हमित रचनाएँ प्राचीन-फागु-संग्रह, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय,
बम्बेरा की आर से प्रकाशित ग्रंथ में प्रकाशित हो चुकी है।

धमाल सप्तक रचनाएँ

१६ वीं शताब्दी

- | | |
|--------------------------------|---------|
| (१) धमाल—जिगम्बर | |
| (२) चतन पुद्गल धमाल—बुवा (दि०) | अपभ्रंश |

१७ वीं शताब्दी

- | | |
|---|------------------|
| (१) नेमीनाथ धमाल गा० १६—धमाल | |
| (२) आषाढ भूती धमाल—कनक सोम स १६३८ | हमारे स ग्रह में |
| (३) आद्र कुमार धमाल—वनक सोम स १६४४ | हमारे स ग्रह मे |
| (४) नेमि धमाल गा० २१—गुण विनय | हमारे स ग्रह में |
| (५) नेमीनाथ धमाल गा० ४९—गान तिलक | हमारे स ग्रह म |
| (६) नेमी धमाल गा० १७—जिन समुद्र सूरि | |
| (७) नेमि धमाल गा० ५—जिन समुद्र सूरि | |
| (८) नेमी राजमती धमाल गा० ३३—जिन समुद्र सूरि | |
| (९) ऋषभ धमाल गा० ५—जिन समुद्र सूरि | |
| (१०) ऋषभ धमाल गा० ५—जिन समुद्र सूरि | |

१८ वीं शताब्दी

- | | |
|--|------------------|
| (१) वसन्त धमाल—धम बदन | हमारे स ग्रह में |
| (२) गुरु धमाल गा० १३—निरम विजय कर्ता | |
| (३) जिन कुशल सूरि धमाल गा० ७—मान विजय | |
| (४) ररन जयगणि धमाल | हमारे स ग्रह म |
| (मालन्व की स्थूलिभद्र धमाल फागु में देखें) | |

धमाल को हिंदी में धमार लिखा मिलता है। अष्ट छाप के कवि नन्ददास गोविन्ददास आदि ने वसन्त एव होली के पद्य की रचना धमार के नाम से ही की है। जन रचनाओं में होरी या एक रचनाओं का प्रारम्भ जिन समुद्र सूरि के नेमी होरी (गा० ४) से होता है। १९ वीं शताब्दी में होरी मञ्जा वाले गीत प्रचुरता से रचे गये और २० वीं में भी यह क्रम जारी रहा। भीमसो मालुक नामक बम्बई के जन पुस्तक प्रकाशक ने होरी सप्तक पदा का एक अच्छा संग्रह प्रकाशित किया है। उसे स्तवन संग्रह रत्न सागर आदि

प्रयोगों में भी होरी के गेय पद प्रकाशित हो है ।

राजस्थान के अनेतर कवियों ने भी घमाल और होरियाँ बनाई पर वे लिखित रूप में नहीं मिली मौखिक रूप से उनका प्रचार परम्परा से चला आ रहा है । लोक साहित्य के अंतगत उनका स्थान प्राता है ।

विवाहलो और मगल काव्य

जीवन में आनन्द और उत्साह के अनेक प्रसंग आते हैं उनमें से विवाह का प्रसंग सबसे अधिक उत्साह का प्रसंग है। उसे गहन ही मगन रूप माना गया है। विवाह के समय घर और यधु का नवजीवन का प्रारम्भ व मिलन का सूत्रपात होने से उनके त्रिये तो यह आनन्द का महान् भवसर होता ही है पर उनके प्रतिरिक्त उन दोनों के परिवार व सभी व्यक्तियों यात्रा जाति प्राप्त व नगर व लोगों को भी यह आनन्द प्रत्यक्ष हाता है। ऐसे प्रसंग में सद्यथा म्त्रिया यथल मगल के गीत गम होना होठ और उत्साह व साथ गाती हैं वह देखन ही बनता है। कई दिन पहिने में ही निशाह की तयारिया होती शुरू होता है और तभी से मगन गीतों का स्वर गुञ्जायमान होने लगता है। विवाह के अनन्तर भी घर वधू सुसज्जन जाने है तो मनों एक नय परिवार के साथ आरामीयता का सन्ध जोड़ने हैं। वहा उन दोनों का वग स्वागत सत्कार होता है। घर को समुराल वाले कई दिनों तक अपन महा रसकर कोड (आनन्द मनाया) करत हैं। इन प्रकार यह प्रसंग बहुत यक्तियों को बहुत दिनों तक आनन्ददायक प्रतीत होगा है। अतएव कवियों ने भी ऐसे प्रसंग का जहा कही भी उन्हें भवसर मना, यडे उत्साह के साथ बगन किया है।

प्राचीन भारतीयों का ये म चरितनायको क विवाह के प्रसंग की चर्चा मिलती है। उनमें तत्कालीन ब्राह्मिक रीतिरिवाजो आदि के मन्ध म भी अच्छी जानकारी मिल जाती है। विशेषकर लोच भापा के काव्यों में विवाह प्रसंग को बखन करन वाले स्वतन्त्र काव्य भी अताधिक मिलेंगे। गुजराती राजस्थानी हिन्दी आदि प्राचीन भाषाओं के ऐसे विवाह वागन प्रधान स्वतन्त्र काव्यों क सम्भव व में इन पक्तियों के लेखक ने कुछ गोथ की है। लेखक को यह विषय गहन ही रसपन् लगा। और लेखक व मग्रह में ऐसे २५-३० काव्य जन कवियों के रचित समुहात हैं जो कि १४ वीं गताब्दी से २० वीं गताब्दी तक क रचित हैं। इनकी भाषा राजस्थानी व गुजराती है। अथ मग्रहालयो के ऐसे जन कवियों क विवाहले काव्यों की सूची बनाने पर उनल जन कविया क रचित ही करीब १० काव्य जानने में

प्राये हैं। हिंदी गुजराती और राजस्थानी के जीनेतर विवाहन का या वो मिलाकर इनकी संख्या १०० से भी अधिक है। यह लेख के अंत में दी गई सूची में स्पष्ट है। इन सब काव्यों पर विस्तार से प्रकाश डालने पर तो एक म्बन्ध ग्रंथ ही तय्यार हो सकता है। यहां तो हिंदी और राजस्थानी के काव्यों पर प्रकाश डाला जा रहा है। आगे है यह लेख अन्य विद्वानों को विशेष काय करने की प्रेरणा देगा।

विवाह वरुण प्रधान काव्यों की संज्ञा

विवाह के प्रसंग का वर्णन करने वाले काव्यों की प्राचीन संज्ञा विवाह विवाहलो विवाहला यह सबसे प्राचीन है। दूसरी संज्ञा 'मगल' है। इनमें से जैन कवियों की एक गुजराती जीनेतर कवियों की रचनाओं की संज्ञा तो सबसे अधिक विवाहना, विवाहलो ही पाई जाती है। मगल शब्द का य वसे तो बगला में बड़ा अधिक मिलन है पर ये विवाह वरुण न होकर चरितकाव्य हैं। हिंदी और राजस्थानी में जीनेतर कवियों के रचित विवाह वरुण प्रधान "मगल" संज्ञक काव्य २० के करीब पाए जाते हैं। इनकी रचना १७वीं शताब्दी से प्रारंभ होती है।

जन कवियों की निराली सूझ और उनके रूपक विवाह काव्य

जैन कवियों के विवाहल काव्य में एक बड़ी विशेषता उल्लेखनीय है कि इन काव्यों में बाह्य एक साम्यांतरिक माने जाय और भाव दोनों तरफ से विवाहो का वर्णन मिलता है। वर वधु को पति पत्नी का सम्बन्ध मानने वाले विवाह का वर्णन तो सब सामान्य है ही पर जन कवियों ने कुछ ऐसे विवाहने का य भी बनाये हैं जिनमें वधु का स्थान स्त्री नहीं पर धार्मिक व्रतों के ग्रहण की स्त्री का रूपक देकर व्रतों का विवाह शब्ध साधनी व्यक्ति से (श्याम श्री श्रीशकुमार) में कराया गया है। इसे जन परिभाषा में भाव विवाह की संज्ञा दे सकते हैं। जब कि वर वधु के विवाह को व विवाह कहा जाता है। यह धार्मिक दृष्टि से आत्मा का संबंध रूप विवाह जैन कवियों की एक अनोखी सूझ है जो दूसरे किसी कवि ने भी काम ही अपनायी है।

इस रूपकविवाह की परंपरा कहीं कहीं हिंदी के मत कवियों की रचनाओं में पाई जाती है उदाहरणार्थ कबीर का निम्नोक्त पं. लीजिय —

दुनहिनी गावहु मपसाच र

हम धरि प्राये हो राजा राम भरतार ॥८६॥

तनरत करि क मनरत करि हू पचता वर तो ।

रामदेव मीर पाहुने घामे में जीवन म मातो
 गरीर सरोवर वेदी करि हूँ ब्रह्मदेवे उबार ।
 रामदेव होगे भावरि लहूँ, धनि धनि भाग हमार ॥
 सुर ततोपु कौतिल भाए पुनिवर सहस्र प्रख्याती ।
 कहे कबौर हम नाहि चले हूँ पुरिस एव धरिनाती ।

अर्थात्

रामरूप धारणा मरे घर पाहुन घाये हैं अत दुलहिन और भरतार के मगनापार
 मगलगीत गाघो । मेरा तन मन उसी को धरिण है । पवतत्व बराती क रूप म घाये है ।
 रामदेव मेरे पाहुने घा गये हैं । मैं जीवन से मन्मन्त हूँ । गरीर सरोवर रूप बेनी करूगी ।
 ब्रह्मज्ञान की जागृतिरूप बेगोचर ममगठ के साथ धाःधाराम के हाथ में भावरे लू गी जमे
 भाग्य ध य हो जायेगा । ३३ कोटि देवता ८८ हजार मुनि साभीरूप होंगे । धरिनाती
 पुरुष मुझे कहा से चले हैं । गुह नानक भी कहते हैं—

गायहु गायहु धाणी विवेक विचार ।

हमारे घर सादया जगजीवन भरताह ।

गुरु दुमारे हमारा बीसाहु जि होसा जासहु मितिसा साजानिघा
 तितु लोका माहि सबहु रामिघा है धाप्रु गह धामन मानिघा ।

विवाहलो काव्य की प्राचीन परम्परा

अपभ्रंश भाषा भारतीय अनेक उत्तर प्रांतीय भाषाओं की जननी है । वह कई
 शताब्दियों तक स्वयं लोक भाषा रही है । पर ११वीं १२वां शताब्दी में प्रांतीय लोक
 भाषाओं में बहुत अधिक परिवर्तन आ जाने से अपभ्रंश का स्थान साहित्यिक भाषा के
 रूप में सीमित हो गया । तेरवीं शताब्दी से प्रांतीय भाषाओं की स्वतंत्र रचनायें मिलने
 लगती हैं पर वसे १४ वीं शताब्दी तक की रचनाओं में अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट है ।
 विवाहला का वारहमासादि सत्र परवर्ती विविध प्रकार के वाक्यों की परम्परा अपभ्रंश
 साहित्य से जुड़ी हुई है । विवाहने कियों की उपलब्धि १४वीं शताब्दी में होती है ।
 उपलब्ध कियों में सब से प्राचीन विवाह गगन काय आगमिक गच्छीय जिन प्रमसूरि का
 'अंतरग विवाह है । यह छंटा सा धार्मिक रूपक विवाह काव्य अपभ्रंश भाषा में
 रचा गया है । प्रादि अत के दो पद्य यथा उद्धृत किये जाते हैं—

प्रारभ पमाय गुण अष्टु पाटण तहि, अहे भवि योजित निदवमु वसए ।
 अउविह सधु जात उअकीय, अहे वाहण सहस सोलण ॥१५॥

अत इण परि परि गए जो अजवि, अहे सहइ सो सिद्धि पुरि वासु ।
 मंगलिकु वीर जिणप्रभह अहे मंगलिकु अउवोह सध ए ॥

(अतरग विवाह घवल वसत रामेण भएनीय)

इस काव्य के वसत राग मे गाये जाने का निर्देश है । इस की पुष्पिका मे विवाह और घवल दोनों सजायें साथ ही दी हैं । विवाह प्रसंग मे घवल और मंगल गीत गाये जाते हैं इनलिये विवाहला और घवल दोनों सजाया को एक सहज मानते हुए परवर्ती रचनाया में एक ही काव्य के लिये वही घवल और वही विवाहला सजा मिली मिलती है । परवर्ती रूपक विवाहलो के निर्माण का प्रेरणास्त्रोत भी ऐसे ही काव्य रहे हैं ।

इसकी रचना सन् १३०० के आसपास मे हुई है और इसकी ताडपत्रीय प्रति पाटण के जन भंडार मे सुरक्षित है । इस अतरग विवाह मे प्रमाद गुणव्यसन को वसत याने नगर भविक जीव को निरूपण कर चतुर्विध सजा को जान उअ और शीलामो को वाहण का रूपक दिया गया है । अत क वान मे मुक्ति से विवाह कराकर सिद्धिपुरि में भविक जीव रूपी वर को पहूँचा दिया गया है परवर्ती सहज सुन्दर रचित अम्बु अतरग विवाहला इसी की परम्परा का काव्य है । इसका परवर्ती रूपक काव्य स १३३१ मे सोममूर्ति रचित जिनेश्वर सूरी नामक परस्पर गव्य क आचार्य ने जन मुनि की दीया ग्रहण की उसका वर्णन करते हुए कवि ने शीलाकुमारी या सयमश्री को कथा का रूपक देकर उसके साथ जिनेश्वर सरि का विवाह यान मिलाप मन्त्र ध जोडा है । वस जनमुनि प्राय लघुवय मे ही दीप्ति हो जाते हैं इनलिये उनके द्रव्य विवाह क प्रसंग का वर्णन करने का अवसर कथाओं को नहीं मिलता क्योंकि वे ब्रह्मचारी ही रहते हैं । इसलिये कवियों ने मंगल श्री को कथा का रूपक देकर भाव विवाह के वर्णन प्रसंग की सृष्टि की है । बालक अवस्था में जिनेश्वरसूरि मटकाव के महारी नमिषद क पुत्र थे । उनका नाम अचडकुमार था । वह अपनी माता मे जन मुनि की दीया ग्रहण करन का अपना विचार प्रकट करने हुए कहते हैं—

परणिमु सयमसिरि वरनारि भाई, भाइए मन्हु भएह विवारी ।

अर्थात् मैं संयमश्री ने साय विवाह करना चाहता हूँ मुझे वही प्यारी है । तदनंतर उन की माता उन्हें स याम स्वीकार करने पर होने वाली कठिनाइयों का अनुभव कहती है पर वे तो अपना निश्चय अटल रखते हुए कहा है—

“किपी न भाषए विष्णु सयममिरो” अर्थात् मुझे संयमश्री (श्रीमा) ग्रहण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सुझाता ।

परणो विष्णु त्रिवन्मिरि विविट भगहि सुक्व माखिमु । अर्थात् मैं दीक्षाश्री से विवाह कर विविध प्रकार के सुखों का अनुभव करूँगा । अतः मैं अक्षयकुमार का वर दत्तकर खेचनपर मे जिनपाति गरि के पास शोका दिलाई जाती है जिसका वरण कवि ने बडा ही सुंदर किया है यथा —

अमिनव ए खालिय जान उत्र, अकड तखई बीषाहि ।
 आपुणु ए अम्मट् चपकवह, हुयउ जानह साहि ॥१६॥
 आवहि आवहि रग भरि पध महवपराय ।
 गायहि वायहि सपुर तिरि अट्टय पववपमाय ॥१७॥
 अठार सह सहरह वरह जोत्रिम लहि सीलय ॥
 खालाहि खालहि खति मुह वेगहि खग तुरग ॥१८॥
 कारइ कारइ नमिषट्ट भडारिउ उच्छाहु ।
 वापइ थापइ जान वेति, लखसखि हरणु अवाहु ॥१९॥
 कुसतिहि खेमहि जाउउत्र वट्टिय खेड मउभारि ।
 उछयु हुयउ अइ पवरो नावहि परकर मारि ॥२०॥
 जिणवइ सुखिण मुलि पवरो देखण अमिय रसेण ।
 कारिये जीमणवार तरि जानह हरिस भरेण ॥२१॥
 सति जणसर वर भुयणि माडिये नदि सुवेहि ।
 वर सहि भविषा दाण बलि, जिन गयणगणि मेह ॥२२॥
 नहि अगिषा रिउ मित्तजए भाणा नल पजलति ।
 तउ मवेगिणि निम्बियउ, इयलेवउ सुमुहुत्ति ॥२३॥
 इखि परि अउउ वर कुमरो परिणइ सजम नारि ।
 वाउइ नण्ये तुर घणा, गुडिय घर घर चारि ॥२४॥

अर्थात् — अथर्वकुमार की अभिनव जान चली, जिसका मुनिया धमरूपी चक्रवर्ती था, पंच महाव्रत रूपा राजा बड़े हृष से उसमें सम्मिलित हुए थे। अष्टप्रवचन माता रूपी सधवा द्विवर्षों ने मधुर स्वर में गीत गाया। १८००० गीताय रूपी रस जोत गये। गात रूपी तेज घोड़े रथा में जाड़े गये जो बड़े बग से चल। नमिचन्द्र भण्डारी और उनकी पत्नी लक्ष्मणी को इस जान का देख क बड़ा हर्ष हुआ। कुशल भेष व माय जान खेड नगर ॥ पत्नीची। वहाँ बहुत बड़ा उत्सव हुआ द्विवर्षी फरफर मृत्य कर रही थी। जिनपति मूरि जो के उप दश रूपी अमृत भोजन में जान का जीमणवार दिया गया। गातिगाय व जिनानय में दीप्ता विवाह की वेदिका बनाई गई। सूत्र गान लिया गया। ध्यान रूपी अग्नि प्रज्वलित की गई। गुम मुहुन ग स वग रूपी हयलवा जान गया इस प्रकार अथर्वकुमार न मयम रूपी तारि व माय विवाह किया। सूत्र वाजिन वज व ध्वजा पनाचार्ये फहराई।

जनाचार्यों के दीप्ताप्रमय के बलनात्मक घाठ विवाह काय मिले हैं। उन सबमें इसी प्रकार समय को कया का रूपक लेकर अमन विवाह सम्पन्न कराया गया है। उपर्युक्त विवाहने के अनंतर महामुंदर न जिनाय्य मूरि विवाहना बताया जो एक मुंदर काय है। इनमें विवाह करान बाल जोनी का स्थान शुद्धी को दिया गया है। ये दोनों काय उन ऐतिहासिक गुजर काय में अथ और हमार सम्पादित 'ऐतिहासिक जन काय्य में यह में प्रकाशित हो चुके हैं। इन दोनों का मध्यवर्ती एसा ही एक छोटा या विवाहला मुनि महानगान रविन युगप्रवर जिनधर मूरि विवाहना है। जिस मने जन मय प्रकार के वय १७ अथ १० में प्रकाशित किया है। ऐस अय का प्रो म अयनदिमूरि विवाहना कानिरत्नमूरि, गुणरत्नमूरि मुनिताधुमूरि और हेम विमल मूरि विवाहिले हैं। य मभी जनाचार्यों व सम्प्रघ में है और इनका रचना समय १४ बी से १६ बी गनाली है। इनमें म उदयादिनसरि विवाहने स तत्कालीन बवाहिक रीति रियाज षटति की अच्छी जानकारी मिलती है। अयन मूरि का उल्लासक्या का नाम राठन था। उह विवाह करने का कहन पर व कन्न हैं —

सयमतिरि स्वय वरि अग्निध ।

बीबी सवि कया वरि अग्निधे ।

अर्थात् — अय व याधो को छोड में मयमथी म ही विवाह बहंगा। फिर

जोगी को बुनाया जाता है वह विवाह का लग्न मुहूर्त देखता है। पिता के घर में उत्सव मनाना प्रारम्भ होता है। चारों ओर कुकुम पत्रिकाएँ भेजी जाती हैं। परिवार के लोग इकट्ठे होते हैं। घबल मंगल और बघावणे गाने प्रारम्भ होत हैं। मन्थ रचा जाता है। बाजे बजने हैं। बत्तीजन विष्णुवली बोलत हैं। लग्न आने पर वर को पाट पर बठाकर स्नान कराया जाता है। क्षीरोदक पहनाया जाता है, स्त्रियों कटोरी में चन्दन भर कर उबटन करती हैं। बहिन भावों को भाँजता, वर को मुकुट धारि धनकार पहनाये जाते हैं। बहिन भागीप देती है। वर घोड़े पर सवार होता है बहुत मे लोग उसके साथ में चलते हैं। वेदपार्थे नृत्य करती हैं वर के मस्तक पर छत्र और दोनों ओर चँबर हुलाये जाते हैं। पीपघाला में पहुँचने पर लग्न का समय आते ही गुरु भी उन्हें भोषा मुहपत्रि प्रादि साधु का वेग देते हैं और समयभी के साथ विवाह हो जाता है। जन दीक्षाग्रहण से पूष प्राज भी समय लेने वाले स्त्री पुरण को तयार किया जाता है मानो वह विवाहने ही चला है।

रूपक विवाहले काव्यो के अतिरिक्त जन कवियों ने तीर्थंकरों व पुराने जन महापुरुषा प्रादि के भी विवाहल काव्य रनाये हैं जैसे— प्रादिनाथ अजितनाथ गति नाथ, सुपारवनाथ चन्द्रप्रभ नेमिनाथ, पाशवनाथ व महावीर इन तीर्थंकरों के करीब ३० विवाहले काव्य मिलते हैं जिनमें सबसे अधिक नेमिनाथ के विवाहले हैं। अथ जन महापुरुषों में अद्रिधुमार मंगल कला गालिमद्र अथवनाथ जम्बुकुमार के विवाहले उल्लेखनीय हैं। ये सभी १५ वी से २० वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक में रचे गये हैं। सन् १४१२ में प्रारम्भ होकर स० १६२६ तक इनका रचनाकाल है इनमें सबसे अधिक विवाहले १७ वीं शताब्दी में रचे गये हैं।

'घबल नामात्तवाली पाँच बड़ी व छोटी २ अनेक रचनायें प्राप्त हुई हैं। जिनमें दो जिनपति सूरि घबल गीत १३ वीं शताब्दी के अन्त की हैं अवशेष १५ वी व १७ वीं के हैं। अनेतर बख्खण समाज में घबल धोन का प्रचार हिन्दी में है। वास्तव में गुजरात से ही इसको अपनाया गया है।

मंगल काव्यो का प्रारम्भ मंगल में १६ वी से शुरू हो के १६ वी तक बहुत अधिक रहा। हिन्दी में मंगल काव्यों का प्रारम्भ १७ वीं शताब्दी में आता है। नरहरि और नन्दाम के स्वमणी मंगल हिन्दी के सब प्रथम मंगलकाव्य हैं— फिर तुलसीदास के पावनीमंगल (स० १६४३ में) और जानकीमंगल रचे गये। १८ वी १९ वी में यह

परम्परा ठीक से चालू रही, जो २० वी तक भी चली आई है। अंतिम मगलकाव्य 'भवानी मगल' स० १९६४ में रचित प्राप्त हुआ है।

भाषा में प्रसिद्ध काव्य 'कृष्ण स्वमणा बलि क अत के पत्रा में स्वमणा मगल शब्द भी आता है पर बलिभो छंद में रच जाने के कारण यह बलि सजा से ही प्रसिद्ध हुआ। इसा समय के लोक कवि पद्या तली का स्वमणा विवाहनी काव्य मिलता है जिसकी सबसे प्राचीन प्रति स १६६६ की लिखित हमारे संग्रह में है, मूलत यह काव्य २५०, ३०० श्लोकों के प्रमाण का था पर लोकप्रिय होने से १६ वी शताब्दी में इसमें स्थान स्थान पर बहुत से नये पद्य जाश्कर सम्मिलित कर दिये और सभी इसकी सजा मगल रखी गई। इसका अंतिम रूप स० १९१६ में मूकवे के शिबकरण रामरतन दरब ने सम्पादित किया। उन्होंने ११ प्रतियाँ को एकत्र कर उनका पाठ में अपनी ओर से कुछ बढाकर इसे तय्यार किया यह स्वयंसिद्ध है, अत मूल काव्य से बढ़ते २ इसका परिमाण करीब १० गुना हो गया है। राजस्थान की जनता में इसका बहुत प्रचार रहा है। गाँवों में व नगर की साधारण जनता आज भी इस बड़ी मक्ति भाव से सुनाती है। भोजन और गृहकार्य से निवृत्त होकर नरनारी इस बड़े चाव से सुनते हैं व इसकी समाप्ति पर भेंट पूजा बढाई जाती है, गायकों को भोजनादि से सारट्टर्य किया जाता है।

हिन्दी में विवाह बणन काव्यों की सजा विवाह के साथ 'मगल' भी पायी जाती है। सर्वप्रथम इस सजा का प्रयोग हम पृथ्वीराज रासो में "विनय मगल" प्रस्ताव लण्ड में पाते हैं। रासो के लघुतम से स्करण में तो यह लण्ड नहीं है, पर अर्थ से स्वरणों में है। वृहद् से स्वरण के ४६ वें समय के रूप में यह प्रकाशित भी हो चुका है। इसमें से योगिता के जन्म व जीवन का घणुन है। से योगिता मदन-वृद्ध ब्राह्मणी के घर पर जाती थी और उसे वह 'विनय मगल' पढाती थी। इसमें पति का गौरव, शिष्टियों की पति के प्रति अनन्य प्रेम भावना और विनय की प्रशंसा बलित है। पृथ्वीराज रासो के इस प्रश का यदि प्राचीन माना जाय तो हिन्दी में मगल सप्तक यह गद्यस पहली रचना नहीं जा सकती है। अथवा हरिहरनिवास द्विवेदी ने कथनानुसार खालियर के कवि विष्णुदास रचित कृष्णमणि मगल सबसे पहला हिन्दी का स्वतंत्र 'मगल' सप्तक काव्य है। श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने विष्णुदास को दू गुरुद्विषिह तामर के समकालीन बतलाते हुए, इसका रचना काल स० १४६२ के लगभग माना है। उन्होंने जा उद्धरण दिये हैं वे राग गौरी, रागनी पूर्वो आदि गय पदों के रूप में हैं। इसकी एक नई सी प्रति

सरस्वती भट्टार उदयपुर में है ।

अनूप सन्तृत लाम्नेरी बीकानेर में कृष्णदास रचित वृष्ण रूकमणी रो विवाहला सदा कुँवर (?) रचित सीताराम जी की स्वयंवर, रूपन्वी रचित रूकमणी मंगल, नारायण रचित व्याहखेल, गुजराय रचित विवाहमंगल और जगनद रचित 'विवाहला प्रयवा गोकलन चरित्र की प्रतिया प्राप्त है । इनमें से गोकलन विवाह का विवरण मेरे राजस्थान में हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज भाग ४ में दिया गया है । यह ऐतिहासिक काव्य है जिसमें बल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य गोकल जी के विवाह का विस्तृत वर्णन है ।

कच्छ के अजभावा प्रभो महाराज लक्ष्मण रचित गिब विवाह की प्रति राजस्थान पुरातत्व मंडिर जयपुर के संग्रह में मुझे प्राप्त हुई थी । इसकी पद्य संख्या १७६ है और रचना सं० १८०५ थावण सुदी ५ की है । इस रचना का परिचय मैं जीवन साहित्य में दे चुका हूँ । कच्छ में रचित दूसरा विवाह वर्णन जनक वि लक्ष्मीकुशल का रचित पृथ्वीराज विवाह भी उक्त जयपुर संग्रह में मिला है । इसमें कच्छ के राजकुमार पृथ्वीराज का विवाह प्रसंग ५२ पद्यों में वर्णित है । सं० १८५१ के बसंत बदी १० को इसकी रचना हुई ।

सुप्रसिद्ध निरजनी सम्प्रदाय के प्रवक्तक हरिदान रचित 'व्याहली' हरिपुरुष की की बानी में छप चुका है । अद्यतन काव्यों के रूपक विवाह' वर्णन भी प्राप्त है । इनमें से एक का उद्धरण श्री परसुराम चतुर्वेदी के सत का य ग्रंथ के पृष्ठ ६१-६२ में देखा था । इनके सत परम्परा के पृष्ठ ४४७ में सत जग जीवन सा० के गिष्य देवीदास रचित 'विनोद मंगल' और भक्ति मंगल का उल्लेख है ।

यहसे कुछ ग्रंथ ऐसे भी हैं जिनका नामांत पद विवाह या मंगल नहीं है पर हैं वे विवाह वर्णन काव्य ही, जैसे कुजगास रचित उवा चरित्र में उवा अनिरुद्ध के विवाह का ही वर्णन है । सं० १८३१ वार्तिक सुदी २ से (३ दिन में) यह रचा गया है । खोज करने पर ऐसे विवाह वर्णन काव्य अनेक मिलेंगे । नामांत पद चाहे चरित कथादि रखा गया हो पर वास्तव में वे लक्षण की दृष्टि से मंगल काव्य ही हैं ।

हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग १ के पृष्ठ १४७ में—

- १ नवलसिंह (प्रधान) कृत रूकमणी मंगल सं० १६२५
- २ हीरानान के रूकमणी मंगल सं० १८३६
- ३ रामकृष्ण चौधे प्रथम और द्वितीय के दो रूकमणी मंगल

का विवरण सन् १९११ तक की रिपोर्टों में होने की बात लिखी है। इसके बाद महिचन्द्र, रामलाल के रुक्मणी मंगल का विवरण छपा है। इसके पश्चात् गत ४ वर्षों में और भी अनेक मंगल काव्यों का विवरण खोज रिपोर्टों में लिया गया होगा। अथ फुटकर उल्लेखों में नागरीदास का "स्वामी हरिदास मंगल" बालकृष्ण का जानकी मंगल चतुरदास का 'कृष्ण रुक्मणी विवाह' हितकृ दावनदास का 'कृष्णगिरि पूजन मंगल' नारायणदास कृत 'व्याहृतो' के उल्लेख मिलते हैं। हिन्दी भाषा का सबसे प्रतिम मंगल का य चतुरभुजदास स्वामी रचित 'भवानी मंगल' स० १९६४ में रचा गया और यह प्रकाशित हो चुका है।

एक रुक्मणी मंगल उस्ताद इन्दरमन का सन् १९२१ में प्रकाशित हमारे स.प्र. में है। हिंदी मारवाडी मिथित भाषा में बानचद तंनारणी रचित "ऊँचा अनिदह व्याहृतो रूपाल' एव रुक्मणी विवाह या मंगल (गरीब पूछाना" सिखपाल, मारवाड, डेडा निवासी) का रचित, सन् १९२० के प्रकाशित हमारे स.प्र. में है।

मंगल काव्यों की सर्वाधिकता और लंबी परंपरा बंगाली भाषा में मिलती है। श्री हंसकुमार तिवारी लिखित "बंगला और उसका साहित्य" पुस्तक के अनुसार बंगला भाषा का सबसे प्रथम मंगल-काव्य सन् १४८१ के मंगलम नामाधरवासु ने 'कृष्ण विजय' लिखा। जिगकी प्रतिदि कृष्ण मंगल या गावि २ मंगल नाम से भी है। उन दिनों पाचामी में देवता का उसका समान पुरुष के गुण बलनात्मक काव्यों की संज्ञा 'विजय' या 'मंगल' ही रखी जाती थी। पहल इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार अत्यंत ही कम था।

'मंगल' शब्द वाले काव्यों में— मनसा मंगल 'बड़ी मंगल' ही प्रधान है। कवि विजयगुप्त का मनसा मंगल सन् १४८५ की रचना है। उनसे पूर्ववर्ती हरिदत्त के मनसा मंगल का एक ही पद मिलता है। विजयगुप्त की रचना के सातभर बाद ही विप्रदास ने 'मनसा मंगल' लिखा। मनसा माणो की देवी है और उमने मंगल काव्यों की संख्या ६० से भी अधिक है। 'सीतला मंगल' 'मृष्टि मंगल' आदि अथ कई अर्थ कथाओं से सम्बन्धित मंगल काव्य मिलते हैं। कवि जयानंद और लोचनदास का चतुर्थ मंगल अस्त्येष्ट चतुर्थ महाप्रभु का जीवनी से सम्बन्धित है। परवर्ती मनसा मंगलकाव्यों में बहीवादन, तारापल्लव्य सीमानंद कंतकादास आदि अनेक कवियों के काव्य प्राप्त हैं।

बड़ी मंगल पर लिखे गये काव्य १६ की संख्या से मिलते हैं। सबसे प्रसिद्ध

कवि कंकरण मुकुन्दराम चक्रवर्ती का चढी मगल' है। माघवाचाय का चढी मगल सन् १५८० मलिवा गया। १० वी १८ वी शताब्दी में कृष्ण मगल काय भी लिख गये, जिनमें से दुखी श्यामदास का गाविन्द मगल' द्विज हरिदास का मुकुन्द मगल' आदि उल्लेखनीय हैं। 'सृष्टि मगल' 'राय मगल' 'बालिका मगल' 'भक्त मगल' आदि काव्यों के सम्बन्ध में हसकुमार तिवारी की उक्त पुस्तक द्रष्टव्य है।

हिन्दी और राजस्थानी के मगल' सजाक काय विवाह वरुण रूप हैं। पर बंगला मगल काव्य व्रत कयामो और चरित काव्यो के रूप में हैं— यही इनका बड़ा अंतर है।

इस प्रकार राजस्थानी गुजराती, हिन्दी और बंगला चार भाषाओं के विवाह और मगल काव्यो सम्बन्धी अपनी जानकारी प्रस्तुत संक्षेप में उपस्थित करने का प्रयत्न मैंने किया है। अभी इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र शोधपूर्ण की बहुत कुछ आवश्यकता है। यह प्रयास तो कथत लिखा सूचक मात्र है। अन्य प्राचीन भाषाओं में भी ऐसे काव्यो की परम्परा रही होगी उसकी खोज भी होनी चाहिए। मुझे ज्ञात जन राजस्थानी गुजराती व हिन्दी रचनाओं की सूची यहां दी जा रही है।

जन कवियों के रचित विवाहलो काव्य सूची

अजित विवाहलउ	गा ३२	मदनन्दन	१५ वी शती
अठारह नाता विवाहलो		हीरानन्दसूरि	१५ वी शती
आदिनाथ विवाहलो	गा २४५	नीबो	१६७५ पूर्व
आदिनाथ विवाहलो	गा १५	दोमराज—जसलमेर अठार १६ वी शती	
आदिनाथ विवाहलो		शुभ	१७ वी शती
आदिनाथ विवाहलो	गा २५	रतनचन्द्र	१६ वी शती
आदर कुमार विवाहलउ	गा ४६	सेवक	१६ वी शती
आदर कुमार विवाहलउ	गा २५	देपाल	१६ वी सभय है
आदर कुमार विवाहलउ	गा २४	अज्ञात	दोनों एक हो हैं
अभयनाथसूरि विवाहलउ	गा २७	अज्ञात जसविजयजो सग्रह	१६ वी शती
अभयभदेव विवाह भवल		सवक	१६ वा शती
अभयभदेव विवाह भवल	गा २७६	श्री देव	१६ वी शती
अतरंग विवाह		जिन प्रभ सूरि	१४ वी शती

कयवना विवाहलो	गा १५	देपाल	१५ वीं शती
कीतिरलन सूरि विवाहलो	गा ५४	कल्याणचन्द्र	१५ शती
कृष्णविवाहलउ	गा ५०	हरदाध	१८ वीं शती
गुणरत्नसूरि विवाहलो	गा ४१	पद्म मंदिर	१६ वीं
बद्रमप्रम विवाहलउ	गा ६३	उदयवधन	१६८४
जबू अतरग विवाहलो	गा ३५	सहजसु दर	१५७२
जबू स्वामी विवाहलो	गा १५	हीरानद सूरि	स १४८५
जबू स्वामी विवाहलो	गा १५	अनात	१४०६
जिन चद्रसूरि विवाहलो	गा ३५	सहजमान	१३३१
जिनेश्वरसूरि विवाहलो	गा ३३	सोममूर्ति	१४३२
जिनोदयसूरि विवाहलो	गा ४४	मेहनदन	१५०५
नेमिनाथ विवाहलो	गा २२	जयसागर	१६ वीं शती
नेमिनाथ विवाहलो	गा २६	देपाल	१७ वीं
नेमिनाथ विवाहलो	गा ७	धनप्रम	
नेमिनाथ विवाहलो		अनात	स १६१५
नेमिनाथ विवाहलो धवल ढाल ४४		ब्रह्मविनयदेवसूरि	स १६६५
नेमिनाथ विवाहलो		महिमसु दर	स १८६०
नेमिनाथ विवाहलो गरबागान २२		वीरविजय	१८८६
नेमिनाथ विवाहलो		ऋषभ विजय	१६२६
नेमिनाथ विवाहलो		केवलचन्द्र	१४१२ के सु ११
पादवनाथ विवाहलो	गा ३६ ६१	अनात	१६ वीं
पादवनाथ विवाहलो		पेषो	१६ वीं शताब्दी
पादवनाथ विवाहलो	गा ८	क्षेमराज अक्षतमर भटार	स १-१७ कावगण
पादवनाथ विवाहलो	ढाल ४६	ब्रह्मविनयदेव सूरि	स १८६०
पादवनाथ विवाहलो		रगविजय	१८ वीं शताब्दी
पादवनाथ विवाहलो	गा ६१	विजयरत्नसूरि भटार	१६ वीं
पादवनाथ विवाहलो	गा ५	अनात	स १८६०
पिपलगच्छ गुरु विवाहलो	गा १७०	धनराज	
पानकनग विवाहलउ			

महावीर विवाहसूत्र		कीतिराज	१५ वीं शताब्दी
महावीर विवाहसूत्र	गा २२	भगवत धनतनाथजी	भंडार १७ वीं
वीरचरित्र विवाहसूत्र	ढाल ३७	ब्रह्मविनयदेव सूरि	१७ वीं शताब्दी
समुञ्जय चतुपरिपाटी			
विवाहसूत्र	गाथा २५	भगवत	१५ वीं शताब्दी
शालिभद्र विवाहसूत्र	गा ४४	सदमण	१५६८ लिखित
शातिनाथ विवाहसूत्र		हृषणम	१६ वीं शताब्दी
शातिनाथ विवाहसूत्र धवल		भानुद प्रमोद	१५६१
शातिनाथ विवाहसूत्र		ब्रह्मविनयदेव सूरि	१७ वीं
शातिनाथ विवाहसूत्र		सहजकीर्ति	१६७८
शातिनाथ विवाहसूत्र		ब्रह्मविनयदेव सूरि	स १६३२
सुपानव जिन विवाहसूत्र धवल	३४	लावण्य समय	१६ वीं शताब्दी
हेम विमल सूरि विवाहसूत्र	गा ७१	हृषणमसूरि गुरुशिष्य	१६ वीं शताब्दी
सुमति साधुसूरि विवाहसूत्र	गा ८२		ई स १५१८
श्री महावीर विवाहसूत्र			
शातिनाथ विवाहसूत्र		सपीरल	१६ वीं
शाति विवाहसूत्र	गा २७		
अनेतर गजराती कवियों के रचित विवाह काव्य			
मष्ट पट्टाणीनो विवाह		दयाराम	
ईश्वर विवाह		गोपीभान	
ईश्वर विवाह		देवीदास छोटा	
ईश्वर विवाह		सुरारि	
कानुदानो विवाह		भगवत	
कृष्ण विवाह		राधाबाई	
गोकुलनाथ जी नो विवाह		महीवदास	
गोपीकृष्ण विवाह		जीवनदास	
जानकी विवाह		तुलसीदास	
बनौनो विवाह		भगवत	
सुनसोनो विवाह		भगवत	१८५७

तुलसी विवाह	गिरधर	१८७१
तुलसी विवाह	प्रभासाकर	
तुलसी विवाह	प्रीतम	
नरसिंहना पुत्रनो विवाह	हरिदास	
नरसिंहना पुत्रनो विवाह	मोतीराम	१७२६
नरसिंहना पुत्रनो विवाह	प्रेमानंद (बडा)	
नरसिंहना पुत्रनो विवाह	प्रेमानंद (छोटा)	
नागर विवाह	रणछोड	
नागन जिती विवाह	दयाराम	
महादेव विवाह	गोपाल भट्ट	
महादेव विवाह	बन्सभ	
महादेव विवाह	फूड	
रघुनाथजीनो विवाह	गोविंद	
राधा विवाह	रणछोड	
राधिका विवाह	राजे बवि	
राधिका विवाह	द्वारको	
रामविवाह	इच्छाराम	
रामविवाह	दिवाली बाई	
रामविवाह	प्रभूराम	
रामजी विवाह	त्रिकमदास	
,	कृष्णदास	
,	गोविन्ददास	
"	दयाराम	
"	घनजी	
"	मुक्तानंद	
"	रघुनाथ	
विठ्ठलनाथजीनो विवाह	माधवदास	
विवाह सेत	धन्म	

विवाह खेन	नारायण	
विवाह खेल	उत्तमराम	
देणीवत्सराज विवाहलठ	दामर	१६०७ लिखित प्रति
सामलसाहनो विवाह	नरसिंह	
सामलसाहनो विवाह	बल्लभ	
सामलसाहनो विवाह	भाषारभट्ट	
शिवविवाह	नाकर	
शिवविवाह	छोटम	
शिवविवाह	रखछोट	
शिवविवाह	अमजीवन	
शिवविवाह	मयाराम	
सत्यभामा विवाह	दयाराम	
सीता विवाह	भालण	
सूरति विवाह	दयाराम	
सूरति बाईनो विवाह	पेलाभाई	
सूरति बाईनो विवाह	धीरो	
सूरति बाईनो विवाह	निभपराम	

हिन्दी के विवाह और मंगल काव्य

कृष्ण रुक्मणी विवाह	चतुरदास	
कृष्ण मंगल यावलो	कृष्णदाम	
जातकी मंगल	तुलसीदास	१६४३
जातकी मंगल	शानकृष्ण	
पावती मंगल	तुलसीदास	१६४३
पृथ्वीराज विवाह पद ५२	नरमोचुराम	स १८५१
भवानी मंगल	चतुमु ज स्वामी	स १६५६-६४
राधा मंगल	भगवत	
रुक्मणी मंगल	नरहरि	१७ गताव्दी
	नन्ददास	

रुक्मणी मंगल	केदाराम	१७५०
"	हीरालाल	१८३६
"	ठाकुरसीदास	
"	रामकृष्ण चौबे	
"	विष्णुदत्त	
"	नवलसिंह बायस्य	
"	रूपदेवी	
"	विष्णुदास	
रुक्मणी व्याकलो	हरिदास निरञ्जनी	
विवाह लीला (गोकुले) विवाह)	जगनन्न	१८ वी
विवाह मंगल	गुनराय	
शिव व्याह पद्य ३७३	महाराजल लक्ष्मण	सं १८०७
स्वामी हरिदास मंगल	नागरीदास	

राजस्थानी के जैनेतर विवाह मंगल काव्य

कृष्ण रुक्मणी वेलि	राठीठ पृथ्वीराज	१६३७
रुक्मिणी विवाहलो मंगल	पद्मा तेली	१६६४ से पूर्व
महादेव पावती वेलि	किससठ	
रुक्मिणी मंगल	उदो	

विवाहलो मंगल सजक का पौ की परंपरा बहुत ही व्यापक विस्तृत रही है। नित्य अनात प्रार्थों की उपलब्धि होती रहती है। विजय धर्मगुरि नान मन्दिर आदि में कुछ इन सूचि के अतिरिक्त प्राचीन विवाहलो मिले हैं। प्राप्त व अनात काव्यों का सम्यक परिशीलन आवश्यक है।

धवल सङ्क रचनाएं

भारतीय सगीत के विकास में जन समाज का महत्वपूर्ण योग रहा है उसका उचित मूल्यांकन अभी नहीं हो पाया है। जन धम भारत का बहुत प्राचीन धम है और प्रारम्भ से ही इसके प्रवक्तक जन तीर्थकारों का यही लक्ष्य रहा है कि धम किसी जाति वंश या देश विशेष की सम्पत्ति नहीं वह तो प्राणी मात्र के उत्थान का विषय है। जातिके परिभाषा में वृद्धे तो, धर्मयुग्य और नियंत्रण का प्रधान कारण है। इसलिए धम सत्ता किसी भी सीमा में अवरुद्ध न रहा जाकर प्राणी मात्र के लिए प्रचारित किया जाना चाहिये। यह दूसरी बात है कि व्यक्ति अपनी योग्यता एवं रुचि के अनुसार ही इन मन्त्रों को ग्रहण कर पाता है पर उसके अथवा एक ग्रहण का द्वार तो सभी के लिए खुला रहना चाहिये। तीर्थकारों के समवरण अर्थात् धम प्रवचन में दब दबी नर नारा ही नहीं बरन् पशु पक्षी भी सम्मिलित होते थे। तीर्थकारों की दिव्य ध्वनि मानव कोणिक राग में सु जायमान होती थी। इधर साधना का महान् तपोबल उधर सगतीमय वाणी का माधुर्य, सहज ही हजारों लाखों प्राणियों के जीवन उत्थान में जादू का सा असर करता था। जन जन को बोध मिल सके, इसलिए तीर्थ कर एक अलौकिक ज्ञान सम्पन्न होने पर भी जन-भाषा में ही उपदेश देते थे। गम्भीर से गम्भीर तत्वों का भी निरूपण उनके द्वारा सबजन सुलभ सरल भाषा में किया जाता था। तीर्थ करों के अनुयायी—जैनाचार्यों ने भी इस परम्परा को निरन्तर चालू रखा और इसी का परिणाम है कि भारत की प्राचीन भाषाओं में, जिन जिन प्रातों में जन धम का प्रचार एक प्रभाव रहा प्रचुर जैन साहित्य उपन्यास होता है। लोक प्रचलित कहानियों हृष्टांत कथाओं और लोक कथाओं का भी जनसाहित्य में खूब उपयोग हुआ है।

सगीत का आकषण अद्भुत है। मानव ही नहीं पशु पक्षी येड पौधे भी उससे प्रभावित होते हैं इसलिए जन-साधारण में धम प्रचार करने के लिए जैनाचार्यों ने लोक सगीत को खूब अपनाया। मेरे नम्र मतानुसार सगीत शास्त्रीय धर्मों में जिन राग रागिनियों एवं देशी सगीत की चर्चा है वह बहुत ही साधारण है। लोक सगीत को शास्त्रीय

परिभाषाओं में वाचना सम्भव नहीं। अमरस्य स्वर लहरियों एवं नाद ध्वनियों को मला कहा तक कोई वर्गीकृत कर और उनका नामकरण करे। हज़ारों लोक-गात और उनकी ध्वनिया जैन रचनाओं में एवं जन साधु साध्वियों एवं यावक श्रविकाओं के कठों में सुरंगित हैं। जन रास, चौपाई आदि ग्रंथों में साम्प्रदायिक छन्दों में से दोहा चौपाई के प्रतिरिक्त बहुत ही कम छन्द व्यवहृत हुए हैं पर लोक गीतों की देशिया का उनमें भरपूर प्रयोग हुआ है। एक एक राम में दस-बीस पचास और किसी किसी में तो साम्प्रदायिक लाख-गीतों की देगियों अर्थात् राग रागिनिया का स्थान मिला है। प्रत्येक ढाल के प्रारम्भ में, बड़ बाल जिन लोक-गीत की दसो रागिनी या ताल पर गाने जानी चाहिये उन लोक गीत की कुछ पकितया भी उद्धृत कर दी गई हैं। जिनमें हज़ारों लाख गीतों की देगियों का प्रचार जन समाज में हुआ एवं अब तक है। ऐसी करोड़ों हज़ार देगिया की एक सूची जन गुजर कविशा भाग ३ के परिशिष्ट में प्रकाशित हो चुकी है।

मध्यकाल के लोक नृत्य एवं नाट्य का भी जानकारी जैन-साहित्य से ही सर्वाधिक मिलती है। छाठवीं नवीं शताब्दी से राम चञ्चरी, घबल मगल एवं फागु के गाने एवं खेलने जाने की परिपाटी जन साधारण में थी। इनकी सबसे अधिक आदर जन विद्वानों की रचनाओं में दिया हुआ मिलता है। चौदहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का खूब प्रचार था। अमलिका छोटे छोटे राम चञ्चरी फागु आदि मकडों की मध्या में जन विद्वानों के (जन भाषा में) रचे हुए मिलते हैं। वे जन समाज में विविध उत्सव प्रसंगों में, मन्त्रियों में गाय एवं खेल जात थे। उनके इन प्रकार के उपयोग होने का उल्लेख उन रचनाओं की अन्तिम पंक्तियाँ में कवियों ने स्वयं किया है। दसवीं शताब्दी के 'उपमिति मय प्रपञ्च कथा' नामक विनयसाहित्य के दोषोड रूपक ग्रंथ में भक्तानीन राम एवं गीत के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। तेरहवीं शताब्दी में पद्महवीं शताब्दी तक की अग्रभंग और राजस्थानी रचनाएँ मकडों की मध्या में मिलती हैं जिनके सम्बन्ध में हिन्दी गुजराती एवं राजस्थानी इतिहास-ग्रंथों में कुछ चर्चा भी प्रकाशित हो चुकी है और ये भी कई निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं।

सांगतिक प्रसंगों में घबल मगल गीत गाय जान का प्रचार शताब्दियों से चला आ रहा है। उत्तर भारत के अने घबल-मगल गीतों के सम्बन्ध में भेरी जानकारी थी पर अगिले भारत कर्नाटक आदि में भी इनका इसी नाम से प्रचार रहा है यह बिहार पिएटर के कृमाक १२ में प्रकाशित साय सरयनाशयण के लेख में सर्व प्रथम विदित

हुआ। क्योंकि दक्षिण भारत की भाषाएँ उत्तर भारत के निवासियों के लिए बुरह हैं इसलिए उधर के साहित्य संगीत कला की उतनी अधिक जानकारी हम लोगों को नहीं है। इसी तरह दक्षिण भारत के विद्वानों को उत्तर भारत के साहित्य संगीत एक कला के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानकारी है। धार्मिक प्रमगों को लेकर दोनों प्रांतों का भावागमन सम्बन्ध बराबर ही रहा है। उत्तर भारत के यात्री दक्षिण भारत के तीर्थों की यात्रा करते रहते हैं और दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारत यात्रा के लिए हजारों की सख्या में आते जाते रहते हैं। इसी प्रकार यात्रा प्राणि ग्रन्थ प्रमगों में भी पारस्परिक मिलन जुलन एक सम्पर्क होना रहता है।

जन धर्म का प्रचार उत्तर दक्षिण दोनों प्रांतों में हजारों वर्षों से समान रूप में रहा है इसलिए जन विद्वानों के द्वारा साहित्यिक धारान-प्रदान भी खूब होता रहा। धवल-म गल गीतों के प्रचार दोनों प्रांतों में होने का प्रधान कारण भी सम्भवतः जन विद्वान ही रहेंगे।

तरहकी चौदहवीं शताब्दी में धवल गीतों का प्रचार उत्पन्न हुए जो कि भागमन प्रसंगों प्राणि में किस तरह होता था इसके सम्बन्ध में कुछ उल्लेख उत्तर गच्छ वृहद पूर्वावलि में प्राप्त हैं व हैं उद्धृत किया जा रहा है। सर्व १२०६ में उत्तर गच्छ के विद्वान् जिनपति सूरिजी का एक रोचक गाथाय अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान की सना अजमेर में हुआ था। विजय के अनन्तर जिनपति सूरिजी राज सभा में अपनी पीयथ शाला या उपाश्रय में वापस पधार उस समय का वर्णन करते हुए पूर्वावलि में लिखा गया है—

तदनन्तर तम स्थानानुक्रमेण सक्षेत्र सरय तुरगमाधि-मन्त्राज पुनानुगम्यमान
मण्डलेश्वर कश्मास प्रभुत राव प्रधानी सह प्रातिवार्ता कुर्वन्त स्त्रकथाभ्यामात्मनीय कीर्ति
शुभावत प्रभूतलाकदीय मानशिष्या गह्वरत श्री पृथ्वीराजसक्रे मेधाडम्बरनाम्नि छत्र
प्रभावनायै मन्त्रकारि भिष्यमाण पुरमध्ये स्थाने-स्थाने रगभरेण्य प्रेनशोथर निरापेचमान,
वाने च याप्रि माणो च्चच्च ि दीवमानान् घत्रलयु गीमानेषु श्री गौतमस्वामी गणधर प्रमुष
पवन सरगुणगणप्रसासन पूरन विरुदावनाददन्तु मन्त्रानेषु आ प्रथमाराज समाथा श्री जिन
पतिदूरिभिर्भित पत्नि पत्रमप्रथ इत्याद्यप्रतिवद्दाम् त काल निष्यन्ताम् चतुष्यदपु पठय
मानाम्, नि स्थान सह पचश-पु राजादेशा नगरे शोभाथा शोभते श्री अजयमेरो
वैत्यपरिपाटि पूर्वक पीपयशानाया समागता आ पु-या ।

इसी प्रकार इनके गुरु जिनचन्द्रमूरि जी सन् १२२३ में दिल्ली में पधारे थे तब राजा मदनपाल एक श्रावकों ने आपका प्रवेश उत्सव मनाया था। उम उमव का वरुण करने हुए मुवाँवलि में निवा है —

श्री मदनपाल महाराजोपरशब्द भा पूज्या श्री दिल्ली प्रति प्रथिपता । वाद्यमा नाद्य चतुर्विगतियु निरुशानुयुगलायु विदावली पठत्तु भट्टनाथेषु धवलेषु टायमानेषु, वस ता दिमगलिभयगोण गायतु गायनेषु, नवमानामु नतकेषु ऊर्ध्वोदृतेष्वानभवसहस्रेषु, मस्तकोपरि धिप्रमाण लुत्रैजल सरय लोकेरुग्यमाने श्री मदनपाल महाराज दत्तहस्तै श्री जिनचन्द्रमूरि भी, राजनेशाङ्कन तनिजानाभ्यादि मया शभे श्री योगिनीपुरे प्रवेश कत ।'

जिन प्रदोष मूरि क सन् १३८७ में जानोर घाने एक जिनचन्द्रमूरि के पट्ट-स्वापना के समय में श्री 'गीयमानपु प्रवरगीतपु, दीयमानपु धवनपु नृत्य मानामु प्रवर पुरागनामु' इन गानों में धवन दिये जाने का उल्लेख है ।

तदनन्तर स० १३७५ में जिनकुणालमूरि जी की मध यात्रा के वाणि में मधशा स्त्रियों के धवन म गल गान और चञ्चरी दिये जाने का उल्लेख इस प्रकार किया गया है— "मविप्रवमुधवाभि मुधाधिकाभिगीयमानपु धवन म गलेषु, दीयमानापु चञ्चरियु ।'

सन् १३८४ और १३६८ में सिधप्रात म जिनकुणालमूरि जी का पदापण हुआ । उनके प्रदोषके समय नाटक करने, तान राम दन और गीत पाय जान का उल्लेख इस प्रकार है— नागाविषेषु नाटकेषु दीयमानेषु नराधिवधमुधवाभिनिरी भिस्त तालराम वेध हा हा हू हू समानानेवगायना वचीभि गियमानेषु गीतेषु गीयमानेष्व विधवमुधवा भिनीरीभि सकना मागनिक्य माला उवाला मलिल धवलपु म गलेषु ।'

सन् १३६० में जिनकुणालमूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रमूरिजी की स्थापना का महोत्सव हुआ उसमें श्री ताल रास दिये और धवन म गल गाय गये । यथा 'स्थाने स्वारा दीयमानेषु तालारामकेषु गीयमानेष्व विधवमुधवनाभिभि धवन म गलेषु ।

उपरोक्त उद्धरणों में यह अत्यन्त स्पष्ट है कि तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी में उत्तरीयों एक मागनिक्य प्रयोगों के समय स्त्रियों के द्वारा धवन म गल गीत गाय जाने का रासस्थान, गुजरात एवं सिध तक में आम रिवाज का और उक्त गानों की कई प्रयोगों में प्रचलित है । विद्याद आदि के समय धवन-मगल गीत धाज भी गाय जात है । यद्यपि

उनके स्वरूप में परिवर्तन हो गया है ।

“धवल” वास्तव में उत्साह का प्रगट करने वाला एक भागलिक गीत विशेष है । पर वह कई रागो में गाया जाता और विविध छंदों में बजाया जाता था, इसकी सूचना हम संगीत ग्रंथों के अनिर्दिष्ट छंदों एवं प्राप्त रचनाओं से मली प्रकार मिल जाती है । वारहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध कलियाल सवज्ञ हेमचन्द्राचार्य के छंदोऽनुशासन में धवल के कई भेद विवेचित हैं । आठ चरखों वाले छंद चरखों वाले और चार चरखों वाले ये तीन भेद तो छंदों की दृष्टि से हैं । इनके नाम थे धवल यगोधवल कीर्ति धवल गुण धवल भ्रमर धवल, भ्रमर धवल उत्साह धवल दोषक धवल आदि थे ।
यथा— धवलमृष्ट वट चनुष्पात् ।

मृष्टपाःपटपाःचतुष्पाःधवल नाम छंदः ।

धवल निहेण सुपुरिसो यण्णज्ज जेण तेण सो धवलो ।

धवलो वि होइ तिविहो म्मठपम्भो छप्पम्भो चउष्पाम्भो ॥

धवलानि च सातथाहमोक्खित्तपु म्मट्ठव्यानि । दिग्गात्र त्वाहरिण्यते ॥

सम्भाष्टाह्वोजे चिदो सम धी धी धवलम् ॥

तत्र धवलेषु मध्येऽष्टाह वी धवले विषमेषु पादेषु चतस्र द्विमात्रश्चक, समेषु पादेषु चतस्र यत्र तच्छी धवलम् ।

यस्य तलेत्तेत्यये । यथा—

लीरसमुद्दिण लवणजलहि, कुवलय कुमुदहि ।

कालिंदी सुरसिधुजलिण, मङ्गमहणु हरिण ॥

कइलासिण सरितउ हू किरि, सो अ जलगिरि ।

इह तुह जल तिरिधयसिउ पट्ट, किं पडुए त हू ॥

आम ततीये चि तीये तुये चि येये ।

त्वोजे चात्तो समे धादो चियां यगोधवलम् ॥

अष्टाह वी धवले अत्यंततीक्ष्णया पादयश्चगणत्रय द्विमात्रश्च । द्वितीय चतुर्थे योराश्चगणत्रयम् । इत्येषु चतुषु पादेषुवाजथा पश्चम सप्तमयोर्दोश्चगणो निमात्रश्चैक समयो पट्टाष्टमयोश्चगणद्वय द्विमात्रश्चैक मतातेरश्चगणत्रय वा यत्र तत्रशाधवलम् ।
यथा—

जे तुह विच्छहि ययणकमलु, ससहरमदल निम्मलु ।

जे वि हृ पालहि मिन्वकम्पु, पुर्णाहि जि निरुवमु विककमु ॥

पडह्ववाद्ये त्रुये पादो द्वितीये पञ्चमे

चो गेदे पाऽप्या च षो वा कीर्तिधवलम् ॥

तत्र पडह्वौ धवले प्रथमे चतुर्थे च पादे द्वीपएमात्रविको द्विमात्र । द्वितीये पञ्चमे च पादे द्वौ चतुर्मात्रौ । शपे तृतीय पण्डे च पगणद्वयात्परश्चतुर्मात्रं पञ्चमात्रा वा चेत् तदा कीर्ति धवलम् । यथा—

उक्करडा लडतड गजजड चिह जुलकुमण्णु,

ड नामड सिह पसर ड सजजड ।

पश्क महभर तुहुँ कडडाँहि, मनु न तिहुअलि,

कित्तिधवल विसाड तुह चट्टड ॥

चतुरहाषाज पश्चौ समे पचचादस्तो वा गुणधरलम् । तत्र चतुरह्वौ धवले विधमपाद्योरेक एमात्रौ समया पचचेम्य परो द्विमात्र स्त्रिमात्रा वा चेत् तदा गुणधवलम् । यथा—

कहमभरगः मागुलया, चहुँ पिहुला दुत्तरजलुस्तया ।

तिन्व भद वहुसुगुणधवलया, जिन्व केम्बड न हसति पिसुखया ॥

पचता पचौ भ्रमर ।

आजपादया एमात्र चतुर्मात्रत्रिमात्रा समया एमात्र चतुर्मात्रौ चेत्, भ्रमरो धवलम् । यथा—

कित्ति तहारि वण्णविण्णु, कड मनु न वण्णहि ।

मालड माणिवि किं भमर घत्तु रड सगहि ॥

पचता पचचा भ्रमरम् ।

सो जे एमात्र चतुर्मात्रत्रिमात्रा समे एमात्र एकचिचतुर्मात्रौ हो चेतदा भ्रमरम् धवलम् ।

यथा— इवहु तुहुँ गुणि अहिअउ, मण्णु वि पडु मड वाहिअउ ।

भ्रमरविलासिण्णोअरा, तुहुँ पर कित्ति निसामिअरा ॥

आद्ययो पचो अरययोइवु सवत्रा ते तो दो वामगतम् ।

आद्ययो प्रथमद्वितीयया पादयो प्रत्येक पगणश्चगणश्च च, अ त्ययाम्भृतय

ये दोनों गीत भव सं २३ वष पूव हयने धपन सम्पादित ऐतिहासिक जन भाव्य सग्रह' में प्रकाशित किये थे। इनमें से साह रण्य रचित थी जिनपतिसूरि धवन गीत क प्राय मिन तीन पद्य नीच दिय जा रहे हैं—

वीर जिएसर नमइ सुरेसर तस पह पणमिय पय कमल ।
 युगवर जिनपतिसूरि गुण गाइसो भक्तिभर हरसिहि मनिरमते ॥१॥

तिहुप्रण सारण सिव सुक बारण वद्विय पुरण बल्पतरा ।
 बिघन विनासण पाय पणासण, दुरित तिमिर भर सहस करो ॥२॥

पुहबि पतिट्टउ सूरि सूरिइवर गम बम सयन तिरि तिलउ ए ।
 इणिए कलिकासहि एह जो जुगववर जिएवइ सूरि महिमा निवउ ए ॥३॥

एसे गीत और भी कई मिल हैं पर उनको धवल सना नहीं दी गई इसलिये उनकी चर्चा यहां नहीं की जा रही है। आचार्यों के नगर प्रवेश पट्टोत्सव एव मय धार्मिक प्रसंगो में ऐसे गीत गाये जाते थे। वं अधिकांग मौखिक रहे और छोटे-छोटे होने से सुरक्षित नहीं रह सके।

विवाह प्रसंग के साथ ता धवल मयल गीतों का स्वास संबंध है और विवाहलो एव मगन काम्य पचासों की संख्या में उपलब्ध हैं जिनक सबष में मेरे कई लक्ष प्रकाशित हो चुके हैं। कई विवाहलो या विवाह सग्न का भी म धवल का नाम भी पाया जाता है। यहां ऐसे ही कुछ काव्यों का परिचय दिया जा रहा है। ऐसे काव्यों में सबसे पहला काव्य सवत् १३२० के लगभग का अंतरग विवाह धवल धपभ्रदा भाया म रचा हुआ प्राप्त हुआ है। जिसको बसंत राग में गान का उत्तम किया गया है। जिन प्रभसूरि रचित इस काव्य का आदि अंत इस प्रकार है—

आदि— पमाय—गुण ठालुपाटण तहि अहे भविमजिउ निहवपु बर ए ।
 चउविहसपु जानउम कीय अहे वाहण सहस सीलय ॥१॥

सुभ परिणामु सवेग सहि अहे वर गइ सोहइ ते सु ए ।
 उवसमरोणि आवासु कीउ अहे धमप्यान वानउ ताणउ ए ॥२॥

अंत— इणिएपरि परिणए जो ध जगि अहे सहइ सो तिडिपुटियासु ।
 मागलिकु वीर जिए प्रभ ए अहे मांगलिकु चउयीह सध ए ॥

अंतरग विवाह धवल बसंत रागेन मयनीय ॥
 चौदहवीं के उत्तरार्ध या पन्द्रहवीं के प्रारंभ की एव धवल अठ पद्यों की प्राप्त

हुँ है उसका नाम जयवन्धु धवल है। इसकी प्रतिलिपि हमारे संग्रह में है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में जयशेखरसूरि रचित 'नेमिनाथ धवल' तेरह पद्यों की मिलती

है। इसका आदि अन्त इस प्रकार है—

आदि— द्वारिका धरि धरि भयल चारु, समुद्र विप्रय, नरवर तखण्ड ए।

गिवा देवी माखिय तखण्ड महाव नमी कुंवर वर परखण्ड ए ॥

उपगत राय समीप कुमारी राजल रुपि रसीयामखी ए ॥१॥

अन्त— राणी राजल तखण्ड भ्रामदु, कवि जण केतलउ कसवइ ए।

जयजय जम गुरु नेमि जिणहु जिणि नेडइ जइपुरीउ ए ॥१५॥

इति श्री जय गेखर सूरि सु गुरु कृता श्री नेमि नाथ धवल।

इसी शताब्दी के सुप्रसिद्ध कवि देपाल क 'भाद्रकुमार विवाहलठ' में धवल नामक लोक गीत या दशो का प्रयोग हुआ है। इसलिए उसका नाम भी कई प्रतिपों में 'भाद्र कुमार धवल' पाया जाता है। उसका आदि अन्त इस प्रकार है।

आदि— भाइ ए नपरइ तिह कुवारि, पच कया रामती रमइ ए।

चिहु पणि वरियल। यम च्यारि, वरनबी पामइ पचमी ए।

अन्त— अम्ह प्रिय धच्छरहाबीघउ ए रमतलइ वार वरीस तु।

बडउ सेतानिउए। जयवत हो जेवच्य तु भसइ ससालीघउ ए ॥

इस रचना की दो प्रतिया हमारे संग्रह में हैं जिनमें से एक सवत १४६३ की निखी हुई है।

सालहवीं शताब्दी में सेवक कवि रचिन 'शुद्धभवेव विवाहलठ' के नाम से दो रचनाएँ मिलती हैं जिनमें से एक सवत १५६० में रची गई है उसमें उस रचना का नाम 'धवल' दिया गया है। 'सम पय परसादिइ गायउ धवल जिणुद' दूसरी रचना के प्रारम्भ में उसका नाम शुद्धभ विवाहलो दिया है पर अन्त में दो पद्यों में उसका नाम 'धवल' भी दिया गया है। यथा—

ऐह धवल करतां भाएण विरोधी जेह।

ऐह धवल गार्हं जिन आराहइ जेह नर नारी सवा

ते मुपती जाइ सुप्रीय जाइ धोतइ 'सेवक' इम सदा'

यह धवल बच विवाहलो काफी बढा है। इममें ४४ ढाले हैं। इसका प्रचार भी बहुत हो रहा है। हमारे संग्रह में कई प्रतिपों हैं।

सतरहवीं गताली म तो धवल सगा वाले बह काव्य रचे गये और व काफी बड़े बड़े हैं। इनका परिचय देन से पूव १६ वीं गताली की एक छोटी रचना नमिनाय धुल' के दो पद्य उद्धृत किय जा रहे हैं इसका राग 'भरवी' पद बच बतलाया गया है। पद्य सरया घाठ है।

धवल सवृत गता का अपभ्रंश रूप धुल अथवा धाला हो गया और इसक बाद 'धोल' नाम प्रसिद्ध हुआ। गुजरात म वण्णव और विनोपत बल्लभ सप्रदाय म सकबो 'धोल' पद या गीत रचे गये। उनका सग्रह विषय धोल तथा पद सग्रह के दो भागों म गुजराती प्रतिलिपि म प्रकाशित हो चुका है। अब नमिनाय धुल व आदि अत व पद्य दिय जा रहे हैं—

श्री नमिनाय धुल रागु भरवी पद बच ।

आदि—सत्रजि सधुण्डो नारि मिलीछ सतेवड तेवडी ए ।
राजलडा घर बारि नेमि कुमर वर जोयती ए ॥१॥

अत—इए परि नेमि कुमार धुल गाइ सवि कामिणी ए ।
राणोय राजिमति भसार भनि धारिस्तिध स्वाभिणी ए ॥२॥

इसी समय की इसी तरह की और भी कई धवलें मिलती हैं पर उन सबका परिचय देना यहा आवश्यक नहीं। जिस प्रकार राम पहल छोटे छोटे बनत ये और पद्महवी धाताब्दी से उनके आकार मे बढोत्तरी हुई उसी तरह श्री पद्महवी धाताब्दी के प्रारम्भ तक तो छोटे छोटे गीतों क रूप म य पर सोलहवीं गताब्दी के उत्तरार्ध से बड़े बड़े 'धवल बनने लग। इसका मुख्य कारण यह था कि छोटे छोटे धवल गीतों को उत्सवादि प्रसंगो म स्त्रिया गाती थी। वहाँ लम्बे काव्यो को गाने का अवकाश न था पर जब रासों की तरह धवलों का कई ढालों म रचा जाना प्रारम्भ हुआ तो उत्सवादि प्रसंगो के वे जेय गीत नहीं रहे।

सोलहवीं गताली की धवल सपन दो बड़ी रचनाओं का जल्सेस पहल किया ज चुका है। इसी गताब्दी की एक और रचना गतिनाय विवाहलु धवल प्रब व आनन्द प्रमोद रचित प्राप्त है जिसकी रचना पाटण मे सवत् १५६१ म हुई। इसमे सोलहवें जन तीपकर शातिनाय के विवाह आदि व जीवन प्रसंगों का वणन है। इसे धवल प्रबय और विवाहला दोनो नाम दिये गय हैं। चौसठ ढालो का यह एक सु दर काव्य है। आदि और पद्य इस प्रकार हैं—

'धावि—सरसति सामिली हसला गामिली मभ मन एक उमालहु ए,
धवल प्रबधिहि बार भवतर, सु दर जाति विधाहसु ए ॥

भत—रचिउ सति विवाहसु धरि उमाहल, तु तु त्रिभुवन केर नाहसु रे ।
भवभय भजन दालिद्र गजण, वीर मेवाडा भङ्गणु रे ॥५२॥

इ द्र चउसठिइ करइ, स्तान्न चउसठि रे, डाल चउसठि रक्या धवलबधि ।

सति समरथ देवा निज पर देवा, मामु भवि तुभ पयबमल सेवा ।

पाटणमांहि शेकाणुमा मांहिरे, गुरु पुण्य गाइप्रो सति माह रे ।

नवरस सागर भएणु जेनारि नर, सुख आवर सपति लेहू अ ॥५३॥

नामि नवनिधि रे अठ महासिद्धि रे, भएण भान-दलहे अठि वृद्धि ॥५४॥

कवि न इसे 'नवरस सागर' नाम दिया है इसलिए इसका साहित्यिक दृष्टि से

मूल्यांकन होना भी आवश्यक है । इसकी हस्तलिखित प्रति हमारे संग्रह में भी है ।

सतरहवीं शताब्दी में प्रारम्भ में कवि 'ब्रह्म' ने शांतिनाथ विवाहलो—धवल

और बासु पूज्य स्वामी धवल की रचना की । जिनमें से प्रथम का यकी प्रति हमारे संग्रह

में भी है । दोनों काव्यों के प्रादि भत के पद्य इस प्रकार हैं—

प्रादि—पाराधु भाविइ सतिकरण भी सति,

गुरुका गुरु ब-दठ, डाली मननी चति,

निर्वाणी नामइ शासन देवि सभाक

सोलम जिन बरएणु धवल रचिसुहळ साव ॥१॥

भत—शांति जिनेसर स्वामी सोलमउ पायो मन उस्तास,

भी ब्रह्म कहइ निनु सवा सारतां पूरई भास ॥२॥

प्राणद प्राणी रे जग गुरु नाइवई

बासुपूज्य धवल का प्रादि भत पद्य ।

प्रादि—चउबीसइ जिए चरए लागीइ, बर श्रुतदेवी पासइ मागीइ ।

लागीइ पाये भी सुगुणइ, धवल रचिसु, सुहामणु ।

भत—रचयउ धवल जिन चरित बवाष्यउ जाणी गुरु मुखी धम ।

ता पिर पड़उ गुणउ भवियएणएण जां बरतइ जिए धम

इसी कवि का एक 'नेमिनाथ धवल' चवालिस डाली में प्राप्त है । उसका प्रादि

भत इस प्रकार है —

वेलि सज्ञक काव्य

जिस प्रकार लोक साहित्य में बहुत सी बातें प्रात और देग का भेद न रखत हुए सबन एक सी पाई जाती है उसी प्रकार शिष्ट साहित्य में भी रचनाओं की बहुत सी सगाए बालिया आदि बहुत ब्यापक प्रदेश में समान रूप से पाई जाती हैं। उन मसामों और बालियों की एकता व समानता के सबब में विशेष अनुसंधान कर प्रकाग बाला जाना प्रावश्यक है।। समय समय पर उनमें जो परिवर्तन और अंतर भेन हुए हैं उन पर भी सूक्ष्मता से विचार किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ विवाहला और मगल नाट्यों की परम्परा बहुत दीर्घकालीन और विशाल रही है। राजस्थान गुजरात और हिन्दी भाषी प्रदेशों के अतिरिक्त बंगाल तक अ यह परम्परा देखने को मिलती है। इस सबब में तसम्बधी लेख में प्रकाग बाला है। इसी प्रकार वेलि या वेलि सज्ञक काव्या की परंपरा भी राजस्थानी, गुजराती व हिन्दी साहित्य में दीर्घकाल संचली आ रही है। इसका ससिप्त परिचय देना ही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

वेलि सज्ञक रचनाओं से स्पष्ट है कि ५०० वर्षों में इस सज्ञा की खूब प्रसिद्धि रही है। राजस्थानी भाषा की सघष्यष्ट वृत्ति किसन रचिनणी री वेलि स तो सभी परिचित हैं। इस काव्य की लोकप्रियता का यह ज्वलत प्रमाण है कि रचना के थोड़े समय बाद ही इसकी दू बाली मारवाडी और मस्कृत में आठ-दस टीकाएँ रची गयी और ब्रज भाषा में भी इसका पद्यानुवाक लाहौरी गोपाल कवि न नौरस विनास के नाम से मिर्जा खान के लिये किया। राजस्थानी भाषा के किसी ग्रथ का प्राचीन ब्रजभाषा में होने का यह एक उदाहरण ही है। ग्रथ से जन समाज का कोई सम्बन्ध न होने पर भी इसकी पाच छद् टीकाएँ जन विद्वानों की रची हुई मिलती हैं जिनमें दो ससृजत की और चार राजस्थानी की प्राप्त हैं।

प्रस्तुत किसन रचिनणी री वेलि स भी पूव रचित वेलि सज्ञक आठ दस रचनाएँ जन तथा जनेतर विद्वानों की उपन्यथ हैं। उनका परिचय हिन्दी ससार में तो प्रा

प्रविद्धित ही है और राजस्थानी भाषा की बलि स जब जैनतर रचनाएँ भी करीब १५ मिलती हैं, उनकी भी जानकारी अभी तक प्रायः नहीं है। केवल मेरे लेख के आधार से स्वामी नरोत्तमदास जी द्वारा सम्पादित "किमन रुक्मिणी री वेलि" की प्रस्तावना में १० रचनाओं के नाम ही दिये गये मिनते हैं, जबकि राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी की करीब ५० से अधिक वेलि सप्तक रचनाओं की जानकारी मुझे प्राप्त है। उनका सक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

वेल, वेलि या वल्लरी ये तीनों स जाएँ एक ही अर्थ की पोषक हैं। पृथ्वीराज राठी ने अपनी किमन रुक्मिणी री वेलि में अपनी रचना की स ज्ञा वेलि रखने का कारण स्पष्ट करते हुए पद्यांक २६१ स ६३ में लिखा है —

वेली तसु बीज भागवत वायड महि चालड प्रियुदास मुल ।

मूल ताल जड अथ मांडहड, सु पिर करणी चडि छाह सुल ॥२६१॥

पत्र भवखर बल द्वारा जस परिमल मव रस तनु विधि अहोनिमि ।

मधुरक रसिक सु अरथ मजरी मुगती फूल फल भुपति मिसि ॥२६२॥

कलि कल्प वेलि चडि कामधेनुका, चितामणि सोम वेलि यत्र ।

प्रगटित प्रथमी प्रियु मुल पकजि अतराडलि मिसि यई संकत्र ॥२६३॥

प्रियु वेलि कि पद्य विध प्रसिध प्रनाली आगम नीमम कजि अखिल ।

मुगति तणी भीसथणी मडी नरग लोक सोपान इल ॥२६४॥

भावाय — यह वेलि वेलि (लता) के समान है। इसका बीज भागवत पुराण है। दास पृथ्वीराज का मुल पृथ्वी का वह स्थान है जिसमें यह बीज बोया गया। मूल पाठ इसकी बालियाँ हैं। अर्थ इसकी जड़ है। थोताओं के स्थिर (एकाग्रता से सुनने वाले) कान मड़प हैं, जिनके ऊपर यह चढ़ी रहती है। मुल इसकी छाया है ॥२६१॥

अन्तर इसके पत्ते हैं। दोहल (पद्य) इसकी पछुटिया है। भगवान का यग इसकी मुगधी है। नवरम इसके तनु हैं। यह रात दिन बढ़ती है भक्ति इसकी मजरी है। साहित्य रसिक इसके भ्रमर हैं। मुक्ति इसका पून है और परमानन्द का भोग इसका फल है ॥२६२॥

कल्पना लता, कामधेनु चितामणि और मोमलता ये चारों पृथ्वीराज ॥ मुख कमल से वलि के अक्षर समूह क रूप में एवत्र होकर इस कवियुग में पृथ्वी के ऊपर बकट हुई हैं ॥२६३॥

यह पृथ्वीराज कुल वेलि है अथवा समस्त निगमागमो तत्र पहुँचाने वाली मुम
सिद्ध पाँच प्रकार की पण्डरी है अथवा स्वर्गलोक को ले जाने वाली सोपान श्रेणी है।

(स्वामी नराचमदास जो द्वारा रूपादिन संस्करण से) ने विवाह प्रसंगों के बल्लुन वाले काव्य विवाह बल्लुन प्रधान हैं। इसलिए प्रो० मजुनाल मजूमदार में विवाह बल्लुन वाले काव्य बहुत थोड़े ही हैं। किन्तु इविमणी वेलि आदि चारण कवियों की रचित इस सजा वाली रचनाओं में प्रयुक्त छन्द 'वेलियो गीत' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं यात्रिक छन्दों की जाति में छोटा साणोर नामक एक छन्द है। उसके चार उपभेदों में एक वेलियो भी है उसका लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

“गुहरावालो बुक मही गुहरामाहि गुणत ।
यणे गीत इम वेलियो आद गुह लघु अत ॥

स्वामी जी ने वेलियों का लक्षण इस प्रकार बतलाया है —

‘जिसके चारो अक्षरों में क्रमशः १६ १५ १६ १५ मात्राएँ हो। इसकी गति बीर या भाल्ला छन्द के समान होती है। अतः म ५ आता है।’

गीत के प्रथम पद्य के प्रथम अक्षर में सवत्र दो मात्राएँ अधिक होती हैं। अर्थात् प्रथम अक्षर १६ मात्रा के स्थान पर २+१६=१८ मात्रा का होता है। (ये प्रतिरिक्त दो मात्राएँ अक्षर के प्रारम्भ में अर्थात् १६ मात्रा के पूर्व जुड़ती हैं अक्षर के अन्त में अर्थात् १६ मात्रा के बाद नहीं जुड़ती)

वास्तव में न ता प्रो० मजुनाल मजूमदार ने जो वेलि को विवाह बल्लुन प्रधान काव्य माना है वह लक्षण ही सवत्र भिन्नता और न वेलि सगक समस्त काव्यों में वेलियो गीत छन्द ही प्रयुक्त हुआ है। वास्तव में वेनि सजा लना व अथ म लोक श्रिय हुई और अनेक कवियों ने उस नाम के आरूपण से अपनी रचनाओं को वेलि इस अत्य पद से संबोधित किया।

उपलब्ध वेलि काव्यों में सबसे अधिक रचनाएँ जन विद्वानों की हैं। उसके पश्चात् चारण कवियों का स्थान आता है और तदनन्तर हिंदी व व यो वा फिर अनेक गुजराती कवियों का। गुजराती में वलि ने नाम वाली चार पांच रचनाएँ ही भिन्नती हैं। जन कवियों में श्वेताम्बर कवियों की रचनाएँ ही अधिक हैं। दिगम्बर कवियों की लिंग पांच रचनाएँ ही भिन्नती हैं।

वेलि सनक काव्यो का वर्गीकरण भाषा और विषय के आधार पर किया जा सकता है। भाषा उनकी हिन्दी, गुजराती राजस्थानी तीनों हैं। बहुत से काव्यों का विषय ऐतिहासिक व्यक्तियों का गुण वर्णन है कुछ में देवी देवताओं की स्तुति है। कुछ पौराणिक व्यक्तियों से संबंधित है तो कुछ जन धर्म से भी संबंधित हैं। प्राग बी जाने वाली रचनाओं के परिषय से यह स्पष्ट हो जायगा।

उपलब्ध साहित्य में जन कविवाद्या (?) रचित 'विद्वग्नि वेलि' सबसे प्राचीन है। जिसका रचना काल १५२० ई० के लगभग का है। १६वीं शताब्दी में सीहा लावण्य समय, महज मुम्बुर, इन श्वेताम्बरो, इसी प्रकार दिगम्बरो व जनेतरों की रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। १७वीं शताब्दी में जन कवियों और चारण कवियों ने बहुत ही वेलि नामान्त पद वाली रचनाएँ बनायीं। १८वीं व १९वीं शताब्दी में भी यह क्रम जारी रहा। २० वीं शताब्दी की कोई उत्तमनीय रचना प्राप्त नहीं है। वसे प्राज भी इन शताब्दी की रचना की जाती है। 'विद्वग्नि' के गत कार्तिक २०११ के अंक में श्री मंगल मेहता रचित 'ममता वेलि' नामक मध्य गीत प्रकाशित हुआ है। 'विद्वग्नि वेलि' से भी पहिले की रचना भी प्राप्त होनी चाहिए, पर जब तक उसका पता न चले वेलि सनक काव्य की पश्यता पाष भी वप दीष नो सिद्ध है ही। गुजरात, राजस्थान और हिन्दी प्रधान देशो के अतिरिक्त अणाल महाराष्ट्र आदि में वेलि सनक रचनाएँ हो तो उनकी जानकारी प्रकाश में आनी चाहिए।

उपलब्ध सब प्रथम रचना 'विद्वग्नि वेलि' जन धर्म के अनुसार मनुष्य, देव, तियम् और नारकी इन चार यन्त्रियों के दुखो का वर्णन करने वाली है। हमारे मध्य ही प्राचीन प्रति के अनुसार इसमें ११३ पद्य हैं। अथ प्रतियों में १४२ पद्य मिलते हैं। प्रारम्भ और अंत के कुछ पद्य नीचे दिए जा रहे हैं —

दव दया पर नमि निग्जन, सज्जन कोई विचारो ।

विषय कसाय वार्दि मनवारी, प्राणसु पू सभारो ।

बिहासु भावियों किहा तू जाइसि, याइसि देटवट प्रान्ति ।

अ सतार पराभव पेसी, जोइ चेतना प्राण्य ॥

ममता भाया तू मन वासियु करइ कसाय कर्मिय ।

समय नील परिभा विसारो भाटियट अर इर ० ।

सख चरौसी योनी प्रमता माएग जउ भव साधो ।
 एक सदा विनवाएो उचारि आन धापयो साधो ॥
 धाय प्रतियो म प्रारंभ के ए भिन प्रकार क भी मिलते हैं । इस रचना म
 नरक गति के दुखों का विघप बएण है इसलिए इसकी एक प्रति मे 'नरक वेदनानी बेलि'
 नाम भी लिखा मिलता है । अत के कुछ पद्य इस प्रकार हैं —

गिरौ काम जिन पूज बीजइ सुमुख यही जइ आए ।
 भविषण थी जिए धम करता पायोतिह बह्याए ॥१३२॥
 ऐ बिहु गतिनि बेति बिचारि, जे दासइ जिए आए ।
 तेहना चरए कमल नइ पासइ हैं बाधु गुण ठाए ॥१३३॥

यद्यपि अंतिम पद में बाधु 'घ' चाहता हूँ' अथ मे प्रयुक्त हुआ है पर
 श्री मोहनलाल दलीपद देसाई ने जन गुरुंर कवि भाग १ और ३ म बच्चा या बाधो
 कवि की रचनाओ मे इस भी सम्मिलित किया है ।

इसी के धाम पास की तिहा कवि की दो छोटी छोटी रचनाए प्रकाशित हो चुकी
 हैं । जिन्हें स १५२५ की लिगित प्रति मे नवनवर जीन युग पुस्तक पाष पृष्ठ ७१ से
 ४, ७ तक म प्रकाशित किया गया है । इनम जम्नू स्वामि बेति १८ पद्यो की है और
 रहनमि बेलि १६ पद्यो की है । जैसलमेर भ्रष्टार म इसी कवि की नेमियेती १५ पद्यो की
 देखी थी । वह उपयुक्त रहनमि बलि से भिन है या धमि न प्रति पाम न होने से निश्चय
 रूप से नहीं कहा जा सकता ।

इनकी परवर्ती रचना लावण्यसमय रचित गभवलि हैं जा ११४ पद्यो की है ।
 इसी नाम की ४४ पद्यो की प्र व रचना भी सहज सुन्दर कवि की प्राप्त होती है । पृथ्वीचद्र
 गुणसागर बेलि की दो पत्रो की प्रति परा क मंडार मे है समस्त वह भी १६ की
 शतांती की हो । १७ की शतांती में बलि नामवाली रचनाए सबसे अधिक मिलती हैं
 जिनकी नामावली इस प्रकार है ।

सवत्प बेलि प्रबन्ध
 गुणठाणा बेलि
 लघु बाहु धनि बेलि
 जन्त पद बेलि

साधु कीर्ति
 जीवधर
 गातिदास
 बनक सोम

स० १६१४ के प्राप्तपास
 स० १६१६ (निपिबाल)
 स० १६२५ (निपिबाल)
 स० १६२५

युधु वेति	भट्टारक घमदास	म = १६३८ से पूव
सूलिमद्र मोहन वेति	जयवंत सूरि	स० १६४८
नेमिराजुल बारहमासा वलि प्र०	,	स० १६५० के आसपास
वीर वदमान जिन वेति	सकलचन्द्र उपाध्याय	स० १६४३ ३० के मध्य
साधु कल्पलता साधु वदना		
युनिवर सुर वेति		
हीर विजय सूरि देशना वलि		
ऋपभ गुण वेति	ऋपमदास	स० १६५२ के बाद
बलमद्रवेति	सासिग	स० १६६६ ८७ के मध्य
चार कपाय वेति	बिद्याकीर्ति	स० १६६६ (लिपिकाल)
सोमजी निर्वाण वेति	समय मुन्दर	स० १६७० के आस पास
प्रतिमाधिकार वेति	सामत	स० १६७०
वृद्धगभ वेति	रत्नाकर गशि	स० १६७५ (लिपिकाल)
पचगति वेति	हय कीर्ति	स० १६८०
पावनाथ गुण वेति	जिनराज सूरि	म० १६८३
मल्लिदासनी वेति	ब्रह्मजय सागर	म० १६८६
आदित्य शारनी वेति कथा		१७ वीं शती
वेति सजक जैनैतर राजस्थानी रचनाए		

चारणादि कवियों की वेति रचनाए भी काफी मिलती हैं पर उनका समय निश्चित नहीं फिर भी अधिकांश रचनाओं का समय १७वीं व १८वीं शती का प्रारम्भ ही प्रतीत होता है। किमन् रुमिणी वेति के अनुकरण में प्राण किसना कवि ने महादेव पावती वेति की रचना की जिसकी प्रति अनुप स स्मृत लाइब्रेरी में है। इन दो के प्रति रिक्त दो अन्य रचनाएँ छोटी छोटी उपलब्ध हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है —

१ भाई माता जी री वेति — प्रकाशित मरु भारती वष ३ अंक १

यह सत महादेव रचित है। निर्वाह चोपन न इसके प्रतिम पद्य में जो म० १५७६ का उल्लेख है उसे इसका रचनाकाल माना है पर वह विचारणीय है।

रूपान्देरी वेति — इस नाम की दो रचनाओं को मैंने मरु भारती वष २ अंक ३ म प्रकाशित किया है। उनका रचनाकाल १५वीं व १६वीं शताब्दी का है। अन्य

लख खरीसो योभी भमता, माणस अउ भव साधो ।

एक सदा जिनवाणी बचारि, भाज भापसो साधो ॥

अप्य प्रतियो म प्रारम के पन् भिन प्रवार के भा मिलते हैं । इस रचना म नरक गति के दुखों का विशेष वर्णन है इसलिए इसकी एक प्रति म 'नरक वेदनानी वेलि' नाम भी लिखा मिलता है । अत के कुछ पद्य इस प्रकार हैं —

गिरणो कान जिन पूज बीरइ सुपुढ यही जइ भाण ।

भविष्यल थी जिला घम करता पामीसिइ कण्याण ॥१३२॥

ते सिद्ध नतिनि वेरि विचारि, जे पासइ जिला धाण ।

तेहना बरण कमल नइ पासइ, हूँ बाधु गुण ठाण ॥१३३॥

यद्यपि अंतिम पद में 'बाधु' शब्द 'चाहता हूँ' अर्थ म प्रयुक्त हुआ है पर श्री मोहनलाल दलीपद देसाई ने जन गुर्जर कवि भाग १ और ३ में वचन या बाधो कवि की रचनाओं म इस भी सम्मिलित किया है ।

इसी के पास वाम की सिहा कवि की दो छोटी छोटी रचनाए प्रकाशित हो चुकी हैं । जिन्ह म १५२५ की लिखित प्रति से नबनकर जीन गुण पुस्तक पाच पृष्ठ ७३ से ४७ तक म प्रकाशित किया गया है । इनम जम्बू स्वामि वेनि १८ पद्या की है और रूहेनिमि वेलि १६ पद्यों की है । जीसलमेर भंडार म इसी कवि की नमिबेसी १५ पद्यों की देखी थी । वह उपयुक्त रूहेनिमि वेलि से भिन है या अभिन प्रति वाम न हान से निश्चय रूप से मही कहा जा सकता ।

इनकी परवर्ती रचना नामणसमय रचित नभवेलि हैं जो ११४ पद्यों की है । इसी नाम की ४४ पद्याकी अप्य रचना भी सहज सुन्दर कवि की प्राप्त होती है । पृथ्वीचन्द्र गुणसागर वेलि की १० पद्यों की प्रति बरान क भंडार म है सम्भवत वह भी १६ की गताली की हो । १७ वी शता ी में वेलि नामवाली रचनाए सबसे अधिक मिलती हैं जिनकी नामावली इस प्रकार है ।

सम्बरय वेलि प्रबन्ध	साधु कीर्ति	म० १६१४ के आसपास
गुणाठाया वेलि	जीवधर	स० १६१६ (लिपिकाल)
सधु बाहु बनि वेलि	गातिदास	स० १६२५ (लिपिकाल)
जइत पद वेलि	कनक गोम	स० १६२५

गुरु वेलि	भट्टारक घमदास	म० १६३८ से पूर्व
स्यूलिभद्र मोहन वेलि	जयवंत सूरि	स० १६४८
नेमिराजुल बारहमासा वेलि प्र०	„	स० १६५० के आसपास
वीर वद्वमान जिन वेलि	सफलचन्द्र उपाध्याय	स० १६४३ ३० के मध्य
साधु कल्पलता साधु वदना		
मुनिवर सुर वेलि	,	„
हीर विजय सूरि देवना वलि	,	स० १६५२ के बाद
ऋषभ गुण वेलि	ऋषभदास	स० १६६६ ८७ के मध्य
बलभद्रवेलि	सालिग	स० १६६६ (लिपिकाल)
चार कपाय वेलि	विद्याकीर्ति	स० १६७० के आस पास
सोमजी निर्वाण वेलि	समय मुन्दर	स० १६७०
प्रतिमाधिकार वेलि	सामत	स० १६७५ (लिपिकाल)
वृद्धगभ वेलि	रत्नाकर गणि	स० १६८०
पद्मगति वेलि	हृष कीर्ति	स० १६८३
पाशवनाथ गुण वेलि	जिनराज सूरि	स० १६८६
मल्लिदासनी वेलि	ब्रह्मजय सागर	१७ वीं शती
आदित्य वारनी वेलि कथा		

वेलि सङ्गक जनैतर राजस्थानी रचनाए

चारणादि कवियों की वेलि रचनाए भी काफी मिलनी हैं पर उनका समय निश्चित नहीं फिर भी अधिकांश रचनाओं का समय १७वीं व १८वीं शती का प्रारम्भ ही प्रतीत होता है। जिसन रुक्मिणी वेनि के अनुकरण में आशा विमला कवि न मन्व पावती वेनि की रचना की जिमकी प्रति ग्रन्थ स सृष्ट सात्री में है। उन का रचना रिक्त दो भाग रचनाए छोटी छोटी उपन्यास हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है —

१. आई माता जो री वलि — प्रकाशित मह नारता वष ३ अक १

यह सत सहस्रव रचित है। निवमिह चोपन न उनके अतिम पद में १। मु० १५७६ का उल्लेख है उसे इसका रचनाकाल माना है पर बट विचारणीय है।

रूपानेरी वेलि — इस नाम की दो रचनाओं का मैंने मह-भारती वष ० अक ३ में प्रकाशित किया है। उनका रचनाकाल १५वीं व १६वीं शती का है। अथ

रचनाएं इस प्रकार हैं —

१	किसन जी री बेल	साखला करममी ह्योचा	१६०० के आसपास
२	गुण चाणिक बेल	चू डो दघवाडियों	१७ वीं शती का आरंभ
३	राठोड देवीदास जतावत री बेल	वारट अमो भाणोत	१६१३ के आसपास
४	राठोड रतनसी खीवावत री बेल		१६१४ के आसपास
५	राणे उदयसिंह जी री बेल	आढा किसना	१६६०-१७०० के मध्य
६	चांदा जी री बेल	वीहू मेहो दुसमाणी	१६२४ के बाद
७	किसन इलमणि री बेल	राठउड प्रयुवास	१६३७-४४ के मध्य
८	त्रिपुर सुंदर री बेल	जसवत	१६४३ लिपिकान
९	राजा रामसिंह जी री बेल	सांरू मालाजी	१६५३ के आसपास
१०	महादेव पावती री बेल	गाहण्य चेलो	१६७२
११	राठ रतन री बेल	महहू कल्याणवाम	१६६४-८८ के मध्य
१२	राजा सूरसिंह जी री बेल	गाहण्य चेलो	१६७२
१३	राव धी मालदेव जी री बेल		
१४	रू गरसिंह जी री बेल	समघा	

१८ वीं शताब्दी की जन रचनाओं में बारह भावना बेलि जय सोम (स० १७०३ में) रचित कई प्रतियों में ही उने बेलि सजा दी है । अधिकान्ग प्रतियों में नहीं है । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बलिया उपलब्ध हैं —

१	प्रथवन सार रचना बेलि	वेगड जिन समुद्र सूरि	
२	गुणसागर पृथ्वी बेलि	गुणसागर	१७२४ के आसपास
३	पड लेस्या बेलि	साह लोहट	१७३०
४	अमृत बलि सद्भाग	मनोविजय	१७००-१७३६ के मध्य
५	सुजय बेलि (जस वेनडी)	वालि विजय	१७४५ के आसपास
६	स पड बेलि	बालच द	१७४५
७	नेम राजुल बेलि	चतुरविजय	१७७६
८	नेमि स्नेह बेलि	जिनविजय	
९	विक्रम बेलि	मत्तिसुंदर	
१०	रघुनाथ चरित नवरस बेलि	महेसदास	१८ वीं शती का आरंभ

११ म मनोपतिपञ्चो रो बेनि	गाडण वीरभाण	१७२६ के पूव
१२ वीर गुमानातिष जी रो बलि		१८ वी शती का प्रत

१६ वो शानान्ती की रचनाए भी बहुत सी मिलती हैं । उपलब्ध विवरण निम्न

निश्चित है —

१ जीव बेलडी	देवीदास	१८२४ के भासपास
२ वीर शरित्त बेनि	गान उद्योन	१८२५ क "
३ गुम बेनि	वीर विजय	१८६०
४ सील बेनि	"	१८६२
५ म्यूल भद्र का रस बेनि	माणक विजय	१८६७
६ नेमि राजिमशी स्नेह बेनि	उत्तम विजय	१८७८
७ विद्याधर सिद्धि बेनि	"	१८८४
८ नमिताथ रस बेनि	,	१८८६
९ नेमि स्नेह बेनि	जिन विजय	

इनके अनिश्चित छाप जात भ्रमर बेनि और दया बेनि का उल्लेख ऐतिहासिक सामाहटी क अन ग्रन्थ की सूची में है तथा आध्यात्मिक प्रवाद बेल का उल्लेख पदा या पर यह देखने में न ध्यान से उसके रचयिता और रचना काल का पता नहीं है ।

बेनि सहक हिन्दी रचनाए

हिन्दी भाषा में कबीर के बीजक में बेनि नाम की एक छोटी सी रचना है, जिसमें प्रथम पक्ति के प्रत में ही रमैया राम दान्द प्राप्त है । परन्तु बीजक की प्रामाणिकता स शिष्य है प्रत स्वामी नरात्मदास जी का सम्मति में कबीर क नाम से स प्रहीत यह बेनि कबीर की रचना नहीं है ।

तुलसीदास की "मनोरथ बन्वरी नामक एक रचना प्रसिद्ध है । इसी नाम की एक अन्य रचना भगवानदास धीर रामराज की प्राप्त हुई है । वृंदावनदास की बेनि स जग प्राप्त रचनाएँ बतलायी गयी हैं । इसी प्रकार धनानन्द रचित "रस केनि बलि" और वियोग बेनि तथा नागरीनाथ रचित वैराग्यबल्लरी धीर कील वराग्य बल्लरी प्रकाशित हो चुकी है । जज्ञनिमि प्रयावती में जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह रचित दु स हरण बेनि और दादू प्रयावती में दादू रचित काया बेनि छप चुकी हैं ।

जनेतर गुजराती वेलि रचनाए

जनेतर कविया द्वारा रचित गुजराती रचनाओं में "वल्लभ वेलि" एक ऐतिहासिक काव्य है जो कि केशव राव कल्याण ने १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रचा है इसमें स० १६७७ में मोक्षुब्धनाथ जी गोकुल आए वहा तक का ऐतिहासिक वृत्तार्थ है। वल्लभाचार्य का जन्म सन् १५२६ बतलाया गया है। प्रसंगी का सन् १६८१ काल तक इसमें महत्वपूर्ण है। कल्याण घम पताका मासिक कपोप १९८१ काल में यह छाप चुकी है।

दूसरी रचना सीता वेलि कवि कविय्या की है। इसके पांच कवियों में राम के साथ सीता का कल्याण है। सीता का स्वरूप वर्णन करते हुए लिखा है —

सीता रूप अलेखित घनिता करे बलान ।

सीता वेलि सुदम रधि जिनि सरोवर सारय पानि ।

गुजरात विद्या सभा में इसकी प्रति है। प्राचिन काव्य विनोद में यह छाप चुकी है।

जीवनदास रचित श्रुतवत्स का उल्लेख हस्तलिखित पुस्तकों की सूची में मिलता है। प्रेमनाथ रचित प्रज्वलन में प्रधानतया कल्याण के जाल चारित्र का सरस भाषा में वर्णन है। कवि दयाराम रचित भक्तवेलि में भक्ता का चरित्र पाया जाता है। रसवेलि नाम की एक रचना स० १७३५ की ज्ञात हुई है। स० १६०७ में केशव किशोर रचित श्रीकीरतलीला में वल्लभ कुल की वेलि का उल्लेख मिलता है।

द्राविड भक्ति उत्पन्न है गुजर पर त जानि

प्रगट ओ विटठल नाथ नू बोनी वेलि बडानि ॥१७१॥

ओ द्वारकेस्वर जु कृपा करी सीनी हो भयनाथ ।

ओ वल्लभकुल की वेलि पर केशव किशोर वलि जाय ॥

यहा वेलि शब्द का अर्थ 'भक्ति की वेलि' समझना चाहिए।

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिगम्बर श्वताम्बर और जनेतर रचित वेलि सजक रचनाओं का प्रारम्भ १९वीं शताब्दी से होता है। सबसे प्राचिन रचनाए श्वताम्बर कवियों की है, जिनमें प्रायिकाश छाटी छोटी है। अनंतर राजस्थानी रचनाओं में कल्याण

रुक्मिणी श्रीर महादेव पावती बेनि ही बडी है, बाकी सब छोटी छोटी हैं। हमीर कवि ने स० १७८६ म नवमाला बलियो ढाँ म रची।

दिगम्बर कवियो द्वारा रचित बेलि

दिगम्बर जैन कवियों द्वारा रचिन कई बेनि काव्यो का उल्लेख त्रयपुर दिगम्बर] प्रथम सूची भाग २ मे पाया जाना है। जिनमे स पचेन्द्रिय की बेलि ठाकुरसी कवि द्वारा रचित स० १५८५ की सबसे पुरानी है। इसकी हस्तलिखित प्रति हमारे सग्रह मे भी है, जिसमे रचनाकाल १५५० दिया है। धादि भत इस प्रकार है—

वन तक्षवर फल लानु फिर, पय जोवतो सुख-द
परसण इन्द्रा प्रेरियो बहु दुःख सहई गय द
कवि गेल्ह सुतनु गुण धामु, जग प्रगट ठकुरसी नामु।
केरि बेलि भरस गुणगाय, चित्त चतुर मनुष्य समझाया।
मन भूरल सख उपाई, तिरितेण चितिन सुहाई
नहीं जम्यो रवणु पसारो, इह एक बचन ॥ सारो।
सबत पधरे से पचासे तेरिस सुद कातिक मास।
जिहि मनु इन्द्रिय बलि किया तिहि हरस परस अग जिवा।

इसी कवि द्वारा रचित नमिराजमति बेलि श्रीर गुण बेलि तथा गेल्ह रचित नमि बलि का उल्लेख जयपुर भंडार सूची म है। य तीना रचनाएँ भि। है य भूमिभ प्रतिधों क निमान पर ही निश्चय हा सकता है। इसी सूची म भारत की बलि का उल्लेख है। दिल्ली के पचायती मंदिर की सूची में १४ गुण स्थान बलि का उल्लेख है जा यथा-कीर्ति के शिष्य ब्रह्मचारी जीवन धर रचित है। हमार सग्रह मे ह्य कीर्ति रचित पद्यगीत बेलि भी प्राप्त है जो संवत् १६३ म रची गयी है। पच इन्द्रिय बलि के साथ ही यह लिखी मिली ह। दोनों एक ही धामी की है। धादि भत इस प्रकार है—

धादि— किसन जिनसर धादि करि, चद मान जिन धात।
नमस्कार करि सरस्यती, चरणो बेलि भन्त।
मिष्यामोह प्रमाद भव, इन्द्रो विषय बसाय।
ओग धतजय सु भरे जोव निगो"ह जाय।
धत इव भें इक सिद्ध धन"त, धा मिल जोति रहा गुणधत।

बिहि ज न जरा नहीं बीस, मुल कास घनन गनीते ।
 सुभ सप्त सौल तियाते, नवमी तिथि ध्यावण भाते ।
 भनि लोक सम्बोधन कोजे कवि हर्षकीरत मुण राजे ॥

इसमें सबसे प्राचीन श्वेताम्बर रचना चिह्नगति बेलि की भाति चार गतियो क दुखो का बणन करते हुए पचम मोक्ष गतियो के दुखों का बणन करते हुए पचम मोक्ष गति का बणन है । खोजने पर, सभव है घोर भी कुछ रचनामा का पता चले । ये रचनाएँ छोटी छोटी हैं इसलिए उनका उल्लेख सूची पत्रो में कम ही मिसता है ।

इन समस्त बेलि सशक रचनामा का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जाना आवश्यक है । अच्छा हो इनका एक संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित किया जाए ।

रेलुआ सञ्जक रचनाए

प्रत्येक वस्तु की सजा का कुछ न कुछ कारण होता है। उस सजा की अपनी परम्परा होती है, जिसका अन्वेषण बड़ा रोचक और ज्ञानवटक होता है। साहित्यिक रचनाओं के नामों के भी विविध प्रकार हैं। कई रचनाओं को उसके भाष्य पद से प्रसिद्धि ही जाती है जैसे "भक्तभर" 'बल्फाण मन्दिर' आदि। कई रचनाओं का नामकरण उनके विषय पर तथा कई रचनाओं का पद संख्या के आधार पर। लोकभाषा की रचनाओं में उनके विशेष ढांचे वचन-विषय छंद आदि के आधार से सजाएँ पायी जाती हैं। जैसे फागु विवाहलड, रास, भास, घबल, बमाल चबरी, बेलि, सवाद, सधि, पवाडा आदि सजाओं राजस्थानी एवं गुजराती भाषा की जैन रचनाएँ पायी जाती हैं। जिनमें से कुछ रचनाओं का परिचय मैंने एच. प्रो० हीरानाथ दसिक्दास कापडिया से जैन सत्यप्रकाश जनघम प्रकाश, राजस्थानी, कल्पना अमल आदि में प्रकाशित किया है। ऐसी रचनाओं की लगभग १२५ सजाएँ मैंने एकत्रित की हैं जिनमें से कुछ पर अपने राजस्थान विश्वविद्यापीठ उदयपुर के सूयमल शासन से लिखे हुए भाषण "राजस्थानी जन साहित्य" शीर्षक में प्रकाश डाला है। महा पर एक ऐसी अप्रसिद्ध सजावापी रचना का परिचय दिया जा रहा है जिसे आज तक "जन गुजर कविओं" आदि किसी ग्रन्थ में उल्लेख देखने में नहीं आया।

बारह वर्ष हुए जसलमेर के ज्ञान मण्डारों का भवलोकन करने के लिये हम प्रथम बार जब वहाँ पहुँचे तो वहाँ के बड़े ज्ञानमण्डार आदि की ममस्त कृतियों का भली भाँति भवलोकन कर कल्पित प्राचीन सश्रु प्रतिभों में से प्राचीन राजस्थानी की रचनाओं की प्रतिनिधियाँ थीं। तभी सब प्रथम हमें 'रेलुआ' सञ्जक बार पाँच रचनाओं की उपलब्धि हुई जो सभी सरवरगन्धोष रचनाएँ हैं और उनका रचनाकाल स० १३३१ से १३८६ के बीच का है। सभी तक इससे पहले और पीछे की किसी सजावापी की इस सजावापी रचना हमारे जानने में नहीं आयी।

रेलुमा' स ज्ञावाली प्राप्त रचनाओं में उनके रचयिताओं ने कही भी इन नाम का प्रयोग नहीं किया है। उन रचनाओं में इतना नाम उल्लेख प्रतिलेखन पुष्पिका में पाया जाता है। प्राप्त सभी रचनाओं का एक ही प्रकार का है, और लोकगीतों की भाँति पहले पद्य के अन्त में प्रत्येक गायक के बाद दुहरायी जान वाली घाबली पायी जाती है, इससे रेलुमा नामक किसी लोक गीत की चाल में इन गीतों का निर्माण हुआ है और इसी कारण इन रचनाओं के अन्त में रेलुमा सजा का प्रयोग कर दिया गया है। रेलुमा को कही रेलुमा भी निम्ना है। ये लोक गीत मूलरूप में क्या था इसका पता लगाना आवश्यक है।

प्राप्त रचनाओं में 'शालिभद्र रेलुमा' भगवान महावीर कालीन मुनिराज क सत्त्व में तथा अवशिष्ट सभी सरतरगच्छाचार्यों या उनकी परम्परा से सम्बन्धित है। जसलमर क बड़ा उपास्य स्थित पचासवीं भटार में स० १४३७ बसाल शुक्ला २ सरतरगच्छाचार्य जिनराजसूरिजी के उपनेग व्य० देवा की पुत्री माकूर थाविका ने लिखायी हुई तथाप्यय पुस्तिका लिखी थी जिसके प्रारम्भ एवं मध्य के कई पत्र प्राप्त नहीं हैं ये रेलुमा सज्ञक रचनाएँ इसी प्रति में प्राप्त हुई हैं। प्राप्त रचनाओं की सू इस प्रकार है —

- १ जिनकुशलसूरि रेलुमा — गा० १० जयममगणि पत्राक ४१२ म
- २ शालिभद्र रेलुमा — गा० ८ पत्राक ४१४ म
- ३ गुरावली रेलुमा — गा० १३ सोममूति पत्राक ४३८
- ४ श्री जिनचन्द्रसूरि रेलुमा — गा० ८ चारित्रगणि पत्राक ४४०
- ५ जिनप्रबोध सूरि वरण (रेलुमा) गा० १० पदारत्न पत्राक

अब यहाँ इन रचनाओं का प्रायः पद दिया जाता है, जिससे इसकी रचना व एक सम्म की ठीक से पाठकों को परिचय मिल जायगा।

श्री जिनकुशलसूरि रेलुमा आदि पद

धनु धनु जहो मन्धिक धनु जयतचदेविय इत्याय गुणसपुन ।
 जाह तयद पुनि अचरित परवाद्य गत्रणो सिरि जिणुशल मुण्डि ॥१॥
 हलि हलि गुक गिदिभाह मालिहयद जिणकुशलसूरि गुक सवियह ।
 लम्भद जिन भन पारु ए ॥ अचलो ॥

जो सालिभद्र रेलुमा आदि पद

राज्यही उग्रानपति ऋषि वीर समसरित घन घसउ सालिभद्र ।
 निः निः रिष मनु हरपियउ, त्रिभुवनगुह पूछियउ वदाविसु सुभद्रु । १॥
 तः तेय मुनि वेड पागुरिया घनु सालिभद्र
 गिहरण बलिया निय अणायि हाथि पामिसउ ॥२॥ आबली

गु बली रेलुमा आदि पद

ब-हिमगु जिणि पयहु करि सहि अणहिल पारणि बाइय अंगि जसदक
 सा जियोमरसरिगुरयणमणि भावहि जे नर से समरद चक ॥१॥
 नर ज्ञगपहाण गुहवरिय हाक निय कठि ठउ तिय लोप सारु ।
 ए मुक्तिमणि जियु हुइ वदेइ ॥ अचला ॥

‘रलुमा’ स ज्ञावानी प्राप्त रचनामा म उनक रचयिताओं ने कही भी इस नाम का प्रयोग नहीं किया है। उन रचनाओं में इस सनावा उत्लेख प्रतिलेखन पुष्पिका म पाया जाता है। प्राप्त सभी रचनाओं का छद्म एक ही प्रकार का है, और लोकगीतों की भाँति पहले पद्य के अनन्तर प्रत्येक गाथा के बाद दुहराये जाने वाली भावली पायी जाती है, इससे रलुमा नामक किसी लोक गीत की चाल म इन गीतों का निर्माण हुआ है और इसी कारण इन रचनाओं के अंत में ‘रेलुमा सज्ञावा प्रयोग कर दिया गया है। ‘रेलुमा को कही ‘रलुमा’ भी लिखा है। ये लोक गीत मूलरूप म क्या था इसका पता लगाना भावश्यक है।

प्राप्त रचनाओं में ‘शालिभद्र रलुमा’ भगवान महावीर बालीन मुनिराज के संबंध म तथा अवशिष्ट सभी सरतरगच्छाचार्यों या उनकी परम्परा से सम्बंधित है। जसलमर के बड़ा सपाथय स्थित पचायती भंडार म स० १४३७ बसाल बुद्धला २ सरतरगच्छाचार्य जिनराजसूरिजी के उपस्था “य० देवा की पुत्री माकूर भाविका ने लिखायी हुई स्थाव्याय पुस्तिका मिली थी, जिसके प्रारंभ एक मध्य के कई पत्र प्राप्त नहीं है ये रलुमा सनाक रचनाएँ इसी प्रति में प्राप्त हुई हैं। प्राप्त रचनाओं की सूची इस प्रकार है —

- १ जिनकुशलसूरि रलुमा — गा० १० जयधमगणि पत्राक ४१२ म
- २ शालिभद्र रलुमा — गा० ८ पत्राक ४१८ म
- ३ गुरावली रलुमा — गा० १३ सोममूर्ति पत्राक ८३८
- ४ श्री जिनब्रह्मसूरि रलुमा — गा० ८ चारित्रगणि पत्राक ४४०
- ५ जिनब्रह्मसूरि वरण (रेलुमा) गा० १० पधारत्न पत्राक

अब महा इन रचनाओं का भाव पद दिया जाता है जिससे इसकी रचना व छद्म सम्बंधों ठीक से पाठकों को परिचय मिल जायगा।

श्री जिनकुशलसूरि रलुमा आदि पद

धनु धनु जलरो मन्विरु धनु जयतनदेविय इत्याय गुणसपुन् ।

जाद तथद बुलि अवररिउ परबादय गणया सिरि जिणकुशल मुण्दि ॥१॥

इति हलि गुरु गिदिभाह मालिइयद जिणकुशलसूरि गुरु सनियह ।

लम्भइ जिन भन पाक ए ॥ अणली ॥

श्री शान्तिभद्र रेलुष्मा आदि पद

राजपुत्री उद्यानपति क्रमि बोरु समसरितु धन एरुठ सालिभद्र ।
 निर निर रिन मनु हगपियउ, त्रिमुवनगुरु पूछियउ उदाविसु सुभद्र । १॥
 तत्र तेय मुनि वेड पागुरिया षु सालिभद्र
 भिहरण बलिया निय जण्णिय हायि पामिसउ ॥२॥ आबली

शु १२ली रेलुष्मा आदि पद

बन्दिमयु जिण्णिय वयटु करि सदि अण्णहिल पारणिय भाइय जगि जसदरुठ
 सा जियेसरसुरिगुरुवर्यणमणिय भार्याइ जे नर ते सगररु वरुठ ॥२॥
 नर जुगपशाण गुरुवरिय हाव निय कठि तठ तिय लाय सरु ।
 ए मुक्तिमणिय त्रियु तुम्ह वटेइ ॥ आबली ॥

पवाडा संज्ञक रचनाएं

भारत का एक विशाल देश है। प्रारम्भ से ही यह अनेक प्रदेशों के समूह के रूप में विद्यमान रहा है। जन परम्परा के अनुसार इसका भारत नामकरण भद्रपदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर हुआ है। भ० भद्रपदेव ने त्यागी जीवन स्वीकार करने से पूर्व अपने साथ २६ पुत्रों को अपना साथ बांट दिया था। उन्होंने जिस जिस प्रदेश पर राज्य किया वह वह प्रदेश उसी नाम से प्रसिद्ध हो गया। उनमें जिस जिस शासकों के नाम बदलते गये तथा इनकी संख्या घटती बढ़ती रही। जनाग्रों में २५। भार्यदेशों के नाम पाए जाते हैं और बौद्ध ग्रन्थों में १६ जनपदों का उल्लेख है। बसे घोड़ी दूर पर भी रीति रिवाज प्रादि में भिन्नता पाई जाती है पर प्रदेशों में तो पारस्परिक भिन्नता अधिक मात्रा में पाया जाना स्वाभाविक ही है। जनाग्रों में १८ प्रकार की भाषाभाषा का भी उल्लेख है पर उनके नाम नहीं मिलते। बसे मागधी मगध देश का, क्षीरसनी—सूरसेन (सधुरा) प्रदेश की महाराष्ट्री महाराष्ट्र की इस प्रकार भिन्न प्रदेशों की विद्यमानता देखकर उन प्रदेशों के नाम से ही भाषाओं के नाम प्रसिद्ध रहे हैं। वि० स० ८३५ में रचित कुवलयमाना नामक जैन ग्रन्थ में तत्कालीन प्रसिद्ध १८ देनी भाषाओं के उल्लेख के साथ १६ भाषाओं की विशेषताओं के उदाहरण भी दिए गये हैं, जो हमारी प्रान्तीय भाषाओं की प्राचीन विशेषताओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

भारत की प्रधान प्रांतीय भाषाओं के क्रमिक विकास का अध्ययन करने के लिये जन साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है। जनों का प्राचीन साहित्य प्रथमागधी प्राकृत में है जो कि बाई हजार वर्ष पूर्व मगध तथा उसके आस पास के प्रदेश की भाषा थी। इसके बाद जब जन घम का प्रचार सूरसेन महाराष्ट्रादि पश्चिमी तथा दक्षिण प्रदेशों की ओर बढ़ने लगा तो जनाचार्यों ने इन प्रदेशों की भाषाओं में भी घम रचना प्रारम्भ की। जहाँ तक महाराष्ट्री भाषा के विकास क्रम के अध्ययन का प्रश्न है, महा राष्ट्री प्राकृत में जन साहित्य विपुल परिमाण में पाया जाने के कारण बहुत ही उपयोगी

सूचनाएँ इन ग्रन्थों से मिल सकती है। पर खेन का विषय है कि महाराष्ट्री विद्वानों ने अभी तक इस ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया है। प्राकृत के पश्चात् अपभ्रंश भाषाएँ लोक समाज के पद धारक हुईं। अपभ्रंश भाषाओं का अपिकाय साहित्य भी जन विद्वानों की ही देन है। इन ग्रन्थों का भी मनी भाति उपयोग होना चाहिए। कुवलयमाला में महाराष्ट्री की विद्वयता इस प्रकार व्यक्त की है—

‘विणल्ले गहिल्ले जल्लविटे तस्य भरहृत्थे ।
पिअ-महिता सगामे सुन्दर मशेय भोइण रोइ ॥’

सङ्कृत छाया—

‘विणल्ले गहिल्ले जल्लपतस्तत्र महाराष्ट्रीयान् ।
त्रियमहिलासप्रामान् सुन्दरगान्शय भोगिनो रौद्रान् ॥’

जसा कि श्रौत प्रभाकरजी माधव ने ‘कल्पना’ के प्रथमांक में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है प्रत्येक भाषा का अपना यथिष्ट्य हाता है, उसकी अपनी सांस्कृतिक परम्परा होती है। परन्तु जहाँ तक भारत की प्राचीय भाषाओं का सम्बन्ध है, उन सब में अपनी अपनी विशेषता होने पर भी सब में एक सुन्नता और सामान्यता भी है। वास्तव में प्राकृत के प्राकृत ही तथ्यपूर्ण हैं। वर्तमान प्राचीय भाषाओं का विकास अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है इमनिय छद, शैली, शब्दावली आदि की दृष्टि से ही नहीं, ग्रन्थों के नामकरण में भी प्राचीय भाषाओं का साहित्य अपभ्रंश भाषाओं का बहुत प्रयोग है। इधर दो तीन वर्षों से राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी, बंगला आदि के प्राचीन ग्रन्थों के नामों पर विचार करने की ओर ध्यान गया तो यह बात और भी स्पष्ट हो गई। अपभ्रंश का नाम से समान प्रकार के ग्रन्थों के नाम रखने की यह प्रथा बन पड़ी थी कि सब नामों का अन्त में एक ही पत्र (यथा रातो मगल आदि) जोड़ा जाता था। इस प्रकार के ‘नामान्त पदों’ में से एक का प्रचार एक प्रदेश में हुआ तो दूसरे का दूसरे प्रदेश में। राजस्थान एवं गुजरात की सीमा मिली होने से प्राचीन राजस्थानी एवं प्राचीन गुजराती एक ही भाषा के दो नाम समझिए। १५वीं शती से इनका पारस्परिक भेद कुछ स्पष्ट होने लगा था। इससे पूर्ववर्ती दोनों प्रान्तों की लोक भाषा की रचनाओं में विशेष भेद नहीं है। अतः नामांत पदों की भी एकता स्वामाविक ही है। पाण्डु विवाहना, राम, चौपाई बेनि, मधि, मत्तोका, धमास, धवल, दावनी सभक

रचनाएँ दोनों भाषाओं में पाई जाती हैं। हिन्दी भाषा में राम की सजा रासो के रूप में प्रसिद्ध है। वैसे हिन्दी में मीनासत हरिचन्द सत आदि सत नामांत वाली रचनाओं की परम्परा भी प्रपञ्च साहित्य से ही आई है। बगल में मगल नामान्त वाले बहुत से काव्य मिलते हैं तो हिन्दी एवं राजस्थानी में भी इनमेंही मगल सजक काव्य उपलब्ध है। इसी प्रकार महाराष्ट्री साहित्य में शिवाजी महाराज के समय पवाडा नामान्त वाली रचनाओं का प्रचुरता से निर्माण हुआ। मायवेजी के उपयुक्त लेख में इनके सम्बन्ध में यह कहा गया है—

‘बामन पंडित और मोरोपत जैसे पंडित कवियों के बाद मध्ययुगीन मराठी साहित्य की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है “पोवाडो” नामक और काव्य। इसमें मुझ का प्रायः प्रसंग-विशेष के बखान, वीरों की जीवनिया और ऐसे ही भोजस्वी विषय रहते हैं। “शाहिरों” का एक पूरा फड (दल) इसे गाता है और लंबी कविता होने से उमम प्रसंगानुसार गद्य भी आ जाता है। ऐसे प्राय १०० ऐतिहासिक पोवाडे मिलते हैं। भक्तानदास का ‘भक्तलक्षण-वच’ और तुलसीदास का तानाजी मालपुरे में दो छत्रपति शिवाजी काल के पोवाडे बहुत विख्यात हैं। स. ४२ में ऐसे ही जनकाव्य इसी गली में लिखे गये।’

‘जनवाणी’ के गत जनवरी के अंक में प्रकाशित प्रो० महादेव सीताराम दूमरकर के “प्राचीन मराठी साहित्य” शीर्षक लेख में भी उपयुक्त भाग्य का ही बक्तव्य है। आपने लिखा है— सबसे पुराना पवाडा भगिनदास का मिलता है जो भक्तलक्षण के वच पर लिखा गया है। पवाडों की उत्पत्ति भम भूलक है। प्रथम साधु सगलों के चरित्रों पर बाद में जब मराठे राजनीति में प्रचुर होने लगे तब वीर मराठों के पराक्रम और बहादुरी पर गीत (पवाडे) गाये जाने लगे। मराठों के साम्राज्य विस्तार के साथ पवाडों का क्षेत्र भी व्यापक होता गया। भगिनदाम अपने ऊपर निर्दिष्ट भक्तलक्षा के पवाडे में कहते हैं—

‘यह सूरवीर पुरुषों का पवाडा सूरवीर ही सुनें।’
गयाप्रसाद एंड सन्स भागला से प्रकाशित तथा नारायण कामुदेव गांधवाले द्वारा लिखित “मराठी साहित्य का इतिहास” हाल ही में मुद्रित हुआ है। पृष्ठ ७० से ८७ में पवाडों के सम्बन्ध में कुछ विशेष बखान पाया जाता है। पर उनका मार यही

है कि मराठी भाषा में पवाडे गिवाजी महाराज के समय से पहले प्राप्त नहीं है। श्री गिवाजी कालीन पवाडे भी ७८ ही उपलब्ध हैं। ये १६वीं शती में अधिक रहे गये। पवाडे वीर गीत के रूप में हाने से महाराष्ट्रों शब्द को-गदि ॥ पवाडे का प्रचार, अथ ही 'वीराच्या पराक्रमोचे विद्वानाच्या वाढिभलेच, तसच एखाद्याचे सामर्थ्य गुण कौशल, इ वाचे काव्यात्मक वखान, प्रशस्ति, स्तुति स्तोत्र पराक्रम कीर्ति' दिया जाता है। अर्थात् वीरों के पराक्रम का वखान करने वाले काव्य के अर्थ में पवाडा 'गद' रूढ़ हो गया है।

यहां तक मराठी साहित्य में पवाडों की प्रचुरता, लोक प्रियता एवं प्राचीनता तथा गण्य पर विद्वानों के मत दिखे गये। अब गुजराती एवं राजस्थानी साहित्य में पवाडा 'ग' किम अर्थ में प्रयुक्त किया गया है इस पर विचार किया जायगा।

स० १४५३ के अथ सुदी १० की जासो मणिहार रचिन हरिश्चंद पुराण कथा के प्रारम्भ में दो बार 'पवाडो' शब्द व्यवहृत पाया जाता है—

मुद्धि बुद्धि मति वकर करउ पसार

पू पुरि पवाडो हरिश्चंद्र राउ ।

तथा—

बह बवित मत लायो वार,

सत हरिश्चंद पवाडो ससार ।

जहाँ तक पवाडा सगक रचनाओं की प्राचीनता का सम्बन्ध है— सब प्रथम जनाकाय हीरानन्द मूरि के स० १४८५ में रचित विद्याविलास चरित में उसे पवाडो की संज्ञा दी गई है।

विद्याविलास नरिंद पवाडो, हृदय भीतर जासो ।

अतराड विण पुष्यकरो मुद्धि, भाव छोखरो घासो ॥

यहाँ पवाडो 'ग' चरित काव्य के अर्थ में प्रयुक्त है। विद्याविलास की कथा वीर रमात्मक नहीं है अपितु हम वचन व अनुसार प्रेम और कौतुक रम प्रधान है। अतः उस समय तक 'पवाडो' 'ग' वीर गीत व अर्थ में रूढ़ नहीं हुआ था, यह स्पष्ट है।

इसके परवर्ती उपलब्ध पवाडा जन कवि गानचंद द्वारा रचित बहचन पवाडो है, जिसकी रचना स० १४६५ में मागरोल नाटियावाड में हुई।

स० १५६३ में वीहू सूजा की रचना रावजतसीरो छन्द" वास्तवमें पवाडा ही है। उसके पद्यान तीन धोर चारसो एक मे 'प्रवाडा', "प्रवाडो" शब्द प्रयुक्त है।

(१) सोहिया प्रवाडा तिङ्ग सीस।

जम्बुघह दीप जग्गी जगीस ॥३॥

(२) काबिसी घट्ट रहूषट्ट किय बीकाहर राह बघक

जहतसो प्रवाडउ किय जना जान

१७ वी शताब्दी के पद्या लेली रचित हबिमली व्यावसो की स० १६६६ की लिखी प्रति हमारे न ग्रह मे है— उसके पद्यान २३ व २४ मे पवाडा धीर 'पुवाडह' शब्द का प्रयोग हुआ है—

'इहि अतार पवाडा कीधा सेता सहई जाणु।

जुग अतर घाम अघतरिया, सेहनउ पार न जाण ॥२३॥

प्रथम पुवाडह पुतना सोली वर दसोयो मु सास।

अहरि नई गगई बावानस दाखव नह कुलि कालि ॥२४॥

पादू जी के पावडे की भाति निहानदे सुल्तान का विस्तृत पवाडा लोक काव्य स गृहीत किया जा चुका है, जिसका कुछ अथ मय-भारती में प्रकाशित हो चुका है।

‘सत’ संज्ञक रचनाएं

विश्व में प्रकृति और प्राणियों को निर्मित वस्तुओं की मर्यादा अनन्त है। व्यवहारिक सुविधा के लिए उन वस्तुओं का पृथक करण भिन्न भिन्न नामों द्वारा किया जाता है। इस तरह नामों की संख्या भी असंख्य हो जाती है। साहित्य की रचनाओं में भी शक्तियों व विषय आदि की विभिन्नता के कारण उसके अनेक प्रकार हो जाते हैं। उनकी पृथक पृथक संज्ञा देना आवश्यक हो जाता है। उनमें से बहुत से नाम तो परंपरागत (सकड़ों वर्षों तक रचयिताओं द्वारा) समाहित पाए जाते हैं तो कुछ नये नामों की भी सृष्टि होती रहती है और पुरातनी संज्ञाएं भुला दी जाती हैं। हमारी प्राचीन लोक भाषाओं में रचित रचनाओं की संज्ञाएं भी सकड़ों की संख्या में हैं जिनमें से कुछ संज्ञाएं प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि की प्राचीन रचनाओं के अनुकरण में रची गई हैं और कुछ लोक साहित्य से ली गयी हैं, नागरी प्रचारिणी पत्रिका के गत वर्ष ५८ अंक ४ में प्रकाशित ‘प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएं’ शीर्षक अपने निबंध में जन कवियों द्वारा रचित राजस्थानी और गुजराती भाषा की प्राचीन काव्य रचनाओं की ११५ संज्ञाओं का उल्लेख करते हुए करीब ८० रचनाओं के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डाला गया है, इन संज्ञाओं के प्रतिरिक्त और भी अधिक संज्ञाओं वाली रचनाएँ मिलती हैं जो राजस्थानी और गुजराती भाषा के काव्य के नामांत पद के रूप में विशेष प्रयुक्त न होकर हिन्दी भाषा के काव्यों के नामान्त पद के रूप में विशेष व्यवहृत हुई हैं। ‘सत’ संज्ञा भी अन्तर्गता है। इस नामान्त वाली प्राचीन रचनाओं का परिचय कराना ही प्रस्तुत लेख का विषय है।

बारहमासा, रास ‘धरधरी मातृका’ कक्का (अक्षराष्टक) आदि संज्ञाएं जिन प्रकार अपभ्रंश काल से हिन्दी राजस्थानी गुजराती में परंपरागत चलती आ रही हैं ‘सत संज्ञक’ रचनाओं का अन्त अपभ्रंश काल से ही चलता आया है। अतः सर्वप्रथम इस नामवाली अपभ्रंश रचना का परिचय देकर फिर हिन्दी काव्यों में उगनी जो परंपरा रही है इसे बतलाया जावेगा।

पाटण के सप्तमी पाठों के अनेक नाम अठार में ताडपत्राय स ग्रह प्रतियां हैं। इन में सं. ५६ में सतरहवीं रचना सीतासत नामक है। जिसका विवरण गायकवाड

घोरीपेंटल मिरीज से प्रकाशित पत्तनस्यप्राच्य जन भद्रागारीय य य मूधी भाग १ के पृष्ठ ४५ में इस प्रकार मिनता है (१७) भीतागत अथभ ग पत्राक ७७ म ७६ गाथा २०
 प्रारभ — पूरवि दशरथु जखिय म धर मायति ।

रज भरह त्रियाविय अ राय म) लखण सजन ॥

अत — यागि लागे मनाविय से स्वामि मह एक अवरह ।

र (१) मु राहक ए भरण, लइले सजम भाउ ।

मिधि बुदुहि वाजियए, खनिय स सीतासत ॥२०॥

प्रस्तुत प्रति भीतामन रचना तरहवी चौदहवा गाना की प्रतीत हानी है इस लिए मत' स जक रचनाओं की परम्परा करीब माल भी आठ मी यप गितनी प्राचीन मिड होती है। इस रचना म भीता क मत सत्व तीन गुण की खचा होने से इस रचना का नामात पर मत रखा गया है। परवर्ती रचनाओं म भी इसी अय से य सना घोर जन जनेतर हिन्दू मुसलमान मभी कवियों न अचनायी है जिसका पना अग मिये जान वाले काव्यों के विवरण द्वारा पाठको की मभी भाति मिय जाएगा ।

भीता सत क परवर्ती हिन्दी माहित्य की 'मत मजक रचनाओं म सबसे पहली रचना कवि साधर रचित मनामत है इसमें मना नामक एक मती म्त्री न अनेक प्रयो मनो से अचकर किस प्रकार अपन शील की रक्षा की जमका विवरण दिया गया है। इस रचना की तीन हस्तलिखित प्रतियों की खर्चा डा० माता प्रसा गुप्त ने अखण्डिका के मत जुलाई अक म की है। मय प्रथम इस रचना का पता (१) खोपपुर के राजकीय लाइब्रेरी की प्रति सन् १९०२ की खोज रिपान प्रकाशित विवरण म हिन्दी जगन की मिया । (२) खनुरमुज काम के मयुमालती क मस्करण म मना सत' की खचा एक मादपा कपा क रूप में पाई जाती है गौर अभी अभी प्रो० एम लम० अइदरी न तब (३) प्राचीन प्रति का विवरण बिहार त्रिभुव सोमायटी के जनन के मयक जूत क अक म प्रकाशित किया है। इन तीनों पाठ समस्याओं पर डा० माता प्रसाद गुप्त ने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि एक दो प्रति के आधार म गाथा के मयक व से निम्न्य करना टीक न होगा। मत इस अय की अय तीन प्रतियों की जानकारी यथा सत्वा आवयथा ममभना है। नवीन जानकारी के रूप म प्राप्त प्रतियों म य प्रथम प्रति का विवरण अय से मात यप पूव मीने अवन 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित अथा की खोज क द्वितीय भाग के पृष्ठ ८१ म प्रकाशित किया था पर वह डा० गुप्त जी क अवनोवन म माया गी प्रतीन होता

मेरा किया गया विवरण इस प्रकार है —

(११) मना का सत —

प्रथमहिं विनउ तिरजन हारा, अलख अगावर मया भडाह ।
 प्रास तरि मोहि बहूत गुमाई, तोरे उर वापी बरद की नाघी ।
 सत्रु भिन्न सब काहु सभाई, भुषत दहिं काहु न बिसार ।
 फूलिज रही अगत कुवागी, जो राता सो बसा सभारी ।
 प्रपन रग प्राप रगराता, झूठे कौन तुम्हारी वाता ।

बोहा — ब धन छाखिर मारियो, अको चरित न सुभि ।

सोबत सपनी देखिया, काधु कर कहु झूभि ॥

घत— मना मालिन निघा घुलाइ, धरि भाटा कुटनी निहुराघी

मु ड मुडाघी कस दुरदीन, कारे पीरे मुख दीका लीन ॥

गदह पलानी क आन चडाघी हाट हाट सब नगरी फिराघी ।

जो जसा कर सु तसा पावे, सिन नातन का अलखु न प्रावे ।

घने दिप्र जा जो रहवाना कादो बापे कि सुनिप्र धाना ॥

बोहा — सतु मना का साधिन, धिर राता करतार ।

कुटनी दस निकारी, कीनी मया क पार ॥

इति मना का सत समाप्त लेखन काल १८ वीं गतावरी ।

प्रति गुटकावार पत्र ५०॥ म ६७ पक्ति १३। अक्षर १३। (अभय जन प्रयानय

त्रि० गुटका)

बिनेय — मालिन ने मना का सत (गाल) च्युत करने का प्रयत्न किया पर वह अटल रही बीच में १२ मास का बरतन है ।

दूमगी और तासरी दो प्रतियाँ अनूप ससृष्ट लादबेरा बीकानेर में है जिनका

जिनका विवरण इस प्रकार है —

गुटका न० ७६ (घ) मना सत रचयिता मिया साधन पत्र १० स १७ तक लिखित —

यह प्रति न० १७२४ स २७ तक की निर्गमन है । इसका विवरण रातस्थानी प्रथो क अतगत राजस्थानी ग्रंथ सूची में द्रश्या है । इस प्रति का न० ११७ है । प्रति अमी मर सामन नहीं है पर इसका विवरण में मालूम होता है कि इसका पाठ अगुद सा है ।

प्रति के विशेष विवरण में लिखा गया है पुस्तक जीएण अवस्था में है बहुत से पत्र खंडित है, प्रादि और अतः अप्राप्त है, लिपि सुवाच्य नहीं है।

इस प्रति के पत्र १६ से ७१ म मना सत लिखा हुआ है। विवरण में प्रति के धनुष पाठ के अनुसार जिस 'मिना सतमी' रचयिता 'मास घान' लिखा है।

श्राज करने पर एक दो प्रतिया और भी मिल सकती है। प्राप्त प्रतियों के आधार से इस छोटे से ग्रंथ का सुसंपादित संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होना आवश्यक है। ग्रंथ के मंगलाचरण और प्रभू सस्कृत लाइब्रेरी के सूचीपत्र में 'कर्ता मिना साधन' नाम छपा है इससे इसका रचयिता मुसलमान कवि है। डा असकरी को प्राप्त प्रति से भी इसकी पुष्टि होती है व साथ ही यह रचना १६ वीं शताब्दी की जानती है। प्रथमी भाषा की एक प्राचीन रचना होने के नाते भी यह शीघ्र प्रकाशन योग्य है।

सत राजक तीसरी रचना - सुप्रसिद्ध प्रेमाख्यानी कविवर "जान" रचित 'सतवती सत' है। जिसका सर्वप्रथम विवरण सु दर प्र थावली, हमारे संपादित राजस्थानी भाग ३ अंक ४ के पृष्ठ १६ म सन् १९४० म प्रकाशित हुआ था। जिसकी प्रनूप सस्कृत लाइब्रेरी में हस्तलिखित प्रतिया मिलती हैं। स० १९७८ म इसकी रचना हुई। इसकी कथा इस प्रकार है।

मनसूर एक व्यापारी है। इसकी स्त्री का नाम सतवती है। वह रूपवती और पतिव्रता है। मनसूर अपने मित्रों के साथ व्यापार के लिए विदेश जाता है। उसकी स्त्री विरह म डुली होती है। कुछ दिन बीतने पर एक भूत ने उसके सौ दम की प्रशंसा सुन कर उसे अपने बश में करना चाहा, उसने आर्क्षित करने के लिए एक दूती को (सतवती के यहा) भेजा पर वह हार व मार खाकर लौटी। सतवती अपने दील में प्रविचल रही। भूत लम्पट किसी मंत्रवादी की सेवा कर उससे रूप परिवर्तनी विद्या सीख लेता है और मनसूर का रूप बनाकर सतवती क यहा जाता है। सतवती को सद्दह होता है इसलिए कुछ दिन तक वह उसे टालती रहती है। इतने म ही इसका वास्तविक पति मनसूर आ जाता है। दोनों एक दूसरे को नकली बताते हैं। समान रूप वाल होने से लोग नियम नहीं कर पाते, थाम के लिए वे राजसभा म राजा के पास पहुँचते हैं। राजा उन दोनों से और सतवती से इनके विवाह की तिथि लिखवा लेता है। सतवन्ती और मनसूर की तिथि एक मिलने पर भूत लम्पट को प्राणदण्ड मिलता है।

हिन्दुस्तानी (राजस्थान म हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज भाग ३) भाग १५

प्रक १ में कवि जान की रचनाओं का विवरण प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार इस कथा का विस्तार ५२ दोहे और चौपाई हैं। कवि जान ने इसी तरह की अन्य तीन सती स्त्रियों के सतीत्व रक्षा के बहाने वाली रचनाएँ शीलवन्ती, कुलवती और तमीम प्रसारी क्रमशः सवत् १६८४, १६९३ और १७०२ में बनाई हैं। जिम प्रति में यह रचनाएँ प्राप्त हुई हैं उसमें इसका नामांत 'सत' नहीं लिखा गया प्रतीत होता है पर रचनाओं के विषय और शब्दी को देखते हुए इनकी गणना भी सत सप्तक काव्यों में ही होनी चाहिए। इन रचनाओं की अन्य प्रतिमा प्राप्त होने पर संभव है यह संज्ञा निम्नी हुई भी मिले।

४वीं और ५वीं 'सत सप्तक रचना' — जन कवि भगवतीदास रचित 'गृहद सीता सतु' और 'लघु सीता सतु' है, दाना महासती सीता के सत्य का विवरण देने वाली हैं। पहली रचना स० १६८४ में रची गयी। उसी को संश्लिष्ट करके सवत् १६८४ के अत्र सुबला ४ मोमवार के दिन भरखा नक्षत्र में सीहरवि शहादरा दिल्ली नगर में बनाई गई। इन ग्रंथ में नारहगामा के मदोदरी सीता प्रयत्नसर रूप में कवि ने रावण और मदोदरी का चित्रण किया है। रचना सरल, हृदयग्राही व रुचिकर है। इसका विवरण 'भनेका ३' वष ५ किरण १२ के पृष्ठ १५ में प्रकाशित है। पचासवीं मन्विर दिल्ली के मरम्बती भट्टार के शुक्रे में यह लिखित रूप में मिली है।

उपयुक्त दोनों सीता सत के रचयिता कवि भगवतीदास बूढिया (जिला प्रग्वाल) के निवस थे। वे अग्रवाल कुल के वसंत गोत्रीय थे। दिल्ली के मट्टारक महोदयन के शिष्य थे। ये बूढिया से दिल्ली आकर रहने लगे थे। कुछ समय हिसार में भी रहे थे। इनके रचित "अनकाय नाम माला" (स० १६८७ दहली में रचित) और 'मृगाक लेखा चरित्र' प्राप्त हैं। अन्तिम ग्रंथ की रचना स० १७०० में हिसार में हुई है। विशेष जान-बारी के लिये अनेकांत वष ५ प्रक १२ और प ७ किरण ६ देखना चाहिए।

सत सप्तक छठी रचना 'हरिचंद सत' है। जो ध्यानव रा द्वारा सवत् १८०० के लगभग में रची गई है। इसका विवरण राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची के तृतीय भाग के पृष्ठ २१६ में इस प्रकार मिलता है —

(७८) हरिचंद सत रचयिता ध्यानदास। यह तीन अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में ११९ पद्य हैं। द्वितीय में १२१ और तृतीय में १००। दोहे १४, सोरठे २, छंद ४ और चौपाईया ३२० हैं। कुल पद्य संख्या ३४० होती है। ग्रंथ का विषय सत्य हार्दिक की पौराणिक कथा है। इसका रचनाकाल कवि ने इस प्रकार दिया है 'उदधि

घोत कर लोजिये लेखन भार अठार" इसके अनुसार स० १८२४ या १८४२ रचनाकाल ठहरता है। ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में राजा का राज्यत्याग और बाग़ी में भागमन, द्वितीय अध्याय में पुत्र रानी व राजा का वियोग पुत्र और रानी का अग्नि गर्मा के यहाँ और राजा का डोम यहाँ निवास। तृतीय अध्याय में रोहित का मृत्यु और शप घटनाएँ हैं।

सत्य हरिश्चंद्र के सत्य के महात्म्य को प्रगट करने वाला होने में श्री इसका नाम हरिचंद्र चरित ग्रन्थकार में रखा है। कई प्रतियों में उसका नाम हरिचंद्र सन लिखा मिलता है। सभी प्रकार सतवती सत की कई प्रतियों में सतवती की बार्ता भी लिखा मिला है। पर वास्तव में ये सब परम्पराएँ एक ही परम्परा एवं विषय की हैं इसलिए इनका नामात्त पद 'सत' ही उचित है व सही है।

इस प्रकार 'सत' सप्तक रचनाओं की परम्परा करीब ५०० वर्षों से चरती प्रतीत होती है।

सत सप्तक शब्द का "यवहार अनन्त जगह" अर्थात् "तक सौ पद्यवाली रचना के सूचक अर्थ में भी पाया जाता है। वृंदावन सत् शृंगार सत, विरह सत आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं।

राजस्थानी साहित्य के संवाद ग्रन्थ

बौद्धिक विचार और तत्व नियम के अनक साधनों में वाद विवाद का भी बड़ा प्रमुख स्थान है। वाग्-वादेजायते तत्त्वबोध" (वाद विवाद करने में वास्तविक तत्व हाथ लगता है) किंतु यह वाद-विवाद जब कुछ जानने की इच्छा से किया जाता है तब ही वह उपयोगी होता है। किंतु जब केवल अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने प्रयत्न दूसरों की नीचा दिखाने के लिये वाद विवाद किया जाता है, तब वह वितर्कवाद का रूप धारण कर लेता है। उससे किसी तरह का निष्पत्ति नहीं हो पाता। वह केवल वाग्जाल भर बनकर रह जाता है।

जिनासा उत्पन्न होने पर उसका समाधान करने के लिये उसमें विशेषण से उसका उत्तर प्राप्त करने के लिये प्रश्नोत्तर की शैली के संवाद, वैदिक युग से लेकर समस्त प्राचीन साहित्य में निरंतर प्राप्त होते हैं। बौद्ध और जन साहित्य में धर्म सत्त्वों का निरूपण इसी प्रश्नोत्तरी शैली में किया गया है। किंतु मध्यकाल में कवियों ने विनोद के रूप में कुछ वस्तुओं और अवस्थाओं को व्यक्तिगत मानकर उनसे संवाद कराये हैं।

बहुत से लेखकों ने ऐसी विरोधी वस्तुओं का परस्पर संवाद कराया है। जिनमें से एक ने अपने गुणों का उत्कृष्ट धर्म दूसरे ने उसका खंडन करके अपना महत्त्व स्थापित करने के सम्बन्ध में तर्क दिये हैं। इस प्रकार के संवाद मूलतः हमें दार्शनिक प्रयोगों में प्राप्त होते हैं किंतु मध्यकाल के लेखकों ने केवल अपने बौद्धिक चमत्कार से कुछ वस्तुओं को वादी प्रतिवादी का रूप लेकर प्रत्येक वस्तु के महत्त्व, दूसरे की दृष्टि में उसके दोष और बहनेवाले की विशेषता का अत्यन्त सुंदर वर्णन किया है। ऐसी रचनायें प्रपञ्चज्ञान विद्वानों की हैं। मन्वयवादी होने के कारण इन जन विद्वानों ने अन्त में इन कल्पित पार्श्वों का परस्पर मिल कर दिया है। ये रचनायें छोटी होने पर भी काव्य चमत्कार की दृष्टि से अत्यन्त सजिल हैं और कवि की सजीवनी प्रतिभा के अद्भुत उदाहरण हैं।

यद्यपि इनकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और साहित्य के प्राचीन प्रयोगों में प्रथमतः इन प्रकार के संवाद आये हैं। तथापि ऐसा रचनायें सोलहवीं शताब्दी में ही

संस्कृत, राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में प्रचुर प्रमाणों में प्राप्त होने लगे हैं। स्वतंत्र रचनाओं में विशेषतः लोक भाषा में प्रचलित एक कृपण नारी सवाद हमें सन् १८३७ का लिखा हुआ प्राप्त हुआ है, जो अभी तक प्राप्त और ज्ञात सवाद रचनाओं में सबसे प्राचीन कही जा सकती है। किंतु वास्तव में इस प्रकार की रचनाओं का विकास सोलहवीं शताब्दी से ही हुआ है। यद्यपि बहुतेका पूर्ववर्ती रचनाओं में ऐसे सवाद बीच-बीच में प्रेषित किये मिलते हैं। अब 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' फलकता के राजस्थानी नामक पत्र के (भाग ३ अंक २) में "भाषाभा के चार प्राचीन उदाहरण" शीर्षक से हमने चौदहवीं शताब्दी की एक रचना प्रकाशित की है जिसमें गुजरी, मालवी पूर्विकी और मराठी चार मंत्रिया अपनी अपनी बोलियों में बात-चात या सवाद करती हैं। इस सवाद में सबने अपने अपने देश की विशेषता और महत्ता का प्रतिपादन किया है। यह सवाद कवि ने शत्रु जय जन तीर्थ पर यात्रा के लिये भाई हुई आशिकाओं से कराया है। इस परम्परा का प्रभाव पूर्ववर्ती जन रचनाओं पर भी पड़ा है। मर-भारती (अंक २ अंक ३) में नेपाल कवि रचित जीरापत्नी पादवनाथ राम हसन प्रकाशित कराया है। जिसमें जीरापत्नी तीर्थ पर उपस्थित मासव मारवाड, सिंध, सोरठ तथा गुजरात इन पांच देशों की स्त्रिया अपने अपने देश की विशेषताओं का वर्णन करती हैं। अंत में नागौर की एक आशिका भाकर उन सबका विवाह समाप्त करके उन्हें पूजा में सम्मिलित कर लेती है। पंद्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा की यह अत्यंत सुन्दर रचना है।

सोलहवीं शताब्दी से जो स्वतंत्र सम्वाद रचनाएँ प्राप्त होने लगती हैं उनमें तीन चार कवियों की रचनाएँ अत्यंत रोचक हैं। जिनमें से विक्रमपंचदशकवा और नवदशतीमी आदि क रचयिता कवि नरपति का त्रिल्लदात सवाद और मुल्ल चपक सवाद स्वर्गीय मोहनलाल दलीचंद देसाई के संग्रह में हैं। इनमें से दशजिह्वा सवाद को डाक्टर भोगीलाल साडेसरा न सन् १९४७ के गुजराती के दीपोत्सवी अंकों में प्रकाशित किया था। यह सवाद दस पद्यों में है जिसमें स पांच में तो दात और जीभ ने अपनी महत्ता सिद्ध की है और आठवें में दात ने जिह्वा सवाद विवाद शांत करने को कहकर दोनों का परस्पर मेल करा लिया है।

इसमें पूर्ववर्ती रचनाओं में कवि सहज सुंदर का (१५७२-१५९५) प्राप्त कान सवाद और यौवन जरा सवाद है, जिसमें २५ छन्द हैं। दूसरी रचना कान सवाद ५ पोटकन्दों में है। कथा यो है कि शत्रु जय में प्रभु का दशन करते समय कान

र आख दोनों अपना अपना महत्व प्रदर्शित करते हैं, किंतु अन्त में दोनों परस्पर मेल
र लेते हैं। क्योंकि आख के द्वारा प्रभु का दर्शन होता है, और वान से प्रभु की मक्ति
गीत सुने जात हैं।

इस शाताब्दी के प्रसिद्ध कवि सावय्यमय की तीन सवाद रचनायें मिलती हैं
(१) रावण मन्दोदरी सवाद (स० १५६२) में ६३ पद्य हैं। (२) कर सवाद (स० १५७५)
गति नगर ॥ ६६ पद्यों में रचा गया (३) मोरी सावली गीत सवाद ६३ पद्यों में लिखा
गया है इसमें से पहिल में सीता इरख के पदघात रावण को मन्दोदरी समझाती है और
नका सवाद चलता है। इसी नाम का खीघर का रचा हुआ एक सवाद भी प्रकाशित हो
गया है जिनकी प्रत्येक पंक्ति में एक एक कहावत गुथी गई है। यह रचना स० १५६५ में
दुनागढ़ (जीण्डु) में हुई। यह कवि मोठ मडालजा जाति के मंत्री मडसा के पुत्र थे।
कावम गुजराती सभा बम्बई ने मांडन रचित प्रबोध बत्तीसी के साथ विस्तृत टिप्पणियाँ
सहित यह सवाद प्रकाशित किया है।

सावय्यमय की दूसरी रचना कर सवाद में प्रसय यह है कि प्रथम तीर्थंकर
ऋषभदेव को बारह महीने से अन्निक समय तक आहार नहीं मिला। बैसाख बंदी ३
(प्रलय तृतीया) को उ हनि वायिक उप का पारणा करने के लिये दोनों हार्थों की
प्रचना में इच्छा ग्रहण किया। इसी के आधार पर कवियों ने कल्पना से दार्प
और बायें हाथ में परम्पर सुन्दर सवाद उपस्थित किया है। दाहिना हाथ अपनी विशेषता
का बखान करते हुए बायें हाथ से मिला मयिन के लिये बहता है तब बाया हाथ अपनी
विशेषताओं का बखान करके दाहिना हाथ को नीचा खिलाने का प्रयत्न करता है। अन्त में
स० ऋषभदेव के मुख से कहलया गया है कि सभी का अपना अपना महत्व है, अतः
दोनों के मिलने से काम सिद्ध हो सकती है। यह सुनकर दोनों हाथ अपना विवाद
समाप्त करके ऋषभदेव श्रेयांगकुमार का बहराया हुआ इक्षुरस दोनों हाथों की अंजलि
में ग्रहण करने पारण करत हैं। अठठारहवीं शाताब्दी के कवि अन्नसोम ने यह सवाद
विस्तृत रूप से रचा, जिसका परिचय आगे दिया जायगा। अठठारहवीं शाताब्दी के ही
सुप्रसिद्ध कवि लक्ष्मीवस्तव ने अपनी कल्पसूत्र की कल्पद्रुम कविका नामक टीका में ऋषभ
वरिच के उपप्रसंग में स्तूत में कर सवाद किया है।

१६ वीं शाताब्दी की रतनमदन द्वारा रचा हुआ एक सवाद सुन्दर नामक
स स्तूत सवादें समुच्चय भी रचा गया। जिसमें (१) धारदपद्यो सवाद (२) गणेश

निबरक सरीयो पापियउं भुण्डउ कोइ ने बीठ ।

वसो बहाल समउ कहो, निबरक मुल बीठ ॥३॥

घाप प्रसशा घापखी, करता इग्र नरिग्र ।

सधुता पामइ लोक मइ, नासइ निज गुण वृग्ब ॥४॥

को कहेनी म करउ तुम्हें निदा नइ अहकार ।

घाप घापखी ठामइ रहो, सहु को भलउ ससार ॥५॥

कविवर की यह रचना बहुत लोकप्रिय हुई प्रतीत होती है क्योंकि इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां तो हमारे सग्रह में तथा अन्यत्र प्राप्त हैं। स० १६६२ सागानेर में १०१ पद्यों में यह स वाद रचा गया। इसकी तत्कालीन प्रसिद्धि का एक विशिष्ट उदाहरण यह भी प्राप्त हुआ है कि स० १६६६ की माघ सुवी में कृष्णदास ने “दान शील तप भावना का रासा” बनाया। जिसकी प्रति हमारे सग्रह में है। यह रचना हिन्दी पद्यों में समय सुन्दरजी के उपयुक्त स वाद के अनुकरण पर रची हुई प्रतीत होती है।

इसी शताब्दी में स० १६८२ या १६८६ में कवि श्रीसार ने पलाठी ने “मोती कपासिया स वाद” नामक १०३ श्लोकों का विस्तृत ग्रन्थ बनाया। इसके प्रारम्भ में कवि ने लिखा है कि ऋषभदेव भगवान् शुद्ध आहार की खोज करते हुए हस्तिनापुर में पधारे। उन्हें मोतियों के बाल से पधिनी स्त्रियों ने बधाया। उस समय मोती ने अहकार में आकर कहा कि मैं ससार में सबसे बड़ा हूँ, मेरे बराबर कोई नहीं। उसने जब अपनी लकी चौड़ी प्रशसा की तो कपासिये ने मोती से कहा कि अभिमान न कर मेरा महात्म्य भी सुन। फिर वह अपनी विशेषताओं का बखान करता है और दोनों का मेल हो जाता है। यह स वाद ६ श्लोकों में है इसकी कई प्रतियां हमारे सग्रह में हैं।

इसके पश्चात् स० १६९६ किसानगढ़ में रचित कवि कुशनधीर का ‘उद्यम कम स वाद’ ३८ पद्यों का है। जिसमें उत्तर प्रत्युत्तर के रूप में उद्यम और कम ने अपनी अपनी बढाई की है। इसी शताब्दी के स वाद स नक कुछ अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त हैं। जिसमें राजकवि रचित रावण मन्दोदरी स वाद स्वतंत्र पदों के रूप में है। स० १६८६ में लूणसागर के अज्ञतासुन्दरी स वाद रचे जान का उल्लेख जनर गुज कविधो भाग १ पृष्ठ १७४ में है। पर उसकी प्रति मुझे प्राप्त नहीं है अतः उसका विशेष परिचय नहीं दिया जा सकता। “हरिणी स वाद” नामक एक अन्य रचना भी देखने में आई है पर इस समय सामने न होने के कारण भी परिचय नहीं दिया जा रहा है। हमारे सग्रह में अन्य

कई छोटी छोटी रचनाएँ हैं जिनमें रचनाकाल का निर्देश नहीं है पर वे सतरहवीं शताब्दी की ही प्रतीत होती हैं —

१ १६ पद्यों में मुनिशील द्वारा रचित कस्तूरी कपूर का वाद इसमें कस्तूरी और कपूर ने अपना अपना महत्व प्रकट किया है।

२ १० पद्यों में श्री हृष रचित सामू बहू विवाद — जिसमें सामू और बहू का विवाद वर्णित है।

३ ६ पद्यों में से कवि द्वारा रचित कृपण लक्ष्मी स वाद

४ २५ पद्यों में दान कवि रचित काश्य जीव प्रेम स वाद अन गुजरकविप्रो भादि में सुधन हृष कवि रचित "मदोदरी रावण स वाद 'पद्य सख्या ६४, जयवत रचित "लोचनकाजल" स वाद पद्य १६ अजितनेव सूरि रचित "समकितशील स वाद" का भी उल्लेख मिलता है।

१८ वीं शताब्दी में लक्ष्मीवल्मज रचित "भरत बाहु बल स वाद, पद्य २६, बाल कद्र रचित पचेन्द्रिय चौपाई १७५१ भागरा यशोविजय रचित समुद्र वाहण स वाद 'विनय विजय रचित" पञ्चसमवाय स वाद (स्तवन) उदय विजय रचित समुद्रकलष स वाद १७५४ और अमय सोम रचित कर स वाद स० १७४७ आस्त्रातीज इनमें से समुद्र वाहण स वाद, पञ्चसमवाय स वाद स्तवन प्रकाशित हो चुका है। इन दोनों के रचयिता बहुत बड़े विद्वान हैं विषय का निरूपण बहुत सुन्दर हुआ है भाषा गुजराती है कर स वाद की प्रति हमारे स ग्रह में है।

१९ वीं शताब्दी में अमृतविजय रचित "रामराजीमती स वाद चौक" स० १८३६ में रचा गया जिसमें कई सखियों का स वाद बड़ा सुन्दर है स० १८२७ में विजय लक्ष्मीसूरि ने जान दशन चारित रतन त्रय का स वाद बनाया है, इसी शताब्दी में श्रवि जयमल के शिष्य रूपचन्द्र ने पचेन्द्रिय की सञ्जय नामक स वादात्मक रचना भी की जिसकी ६ पत्तों की प्रति हमारे स ग्रह में है।

ऊपर जिन स वादों का परिचय दिया गया है वे प्रायः सभी जैन विद्वानों की रचनाएँ हैं अनंतर कवियों का भी कुछ ऐसी रचनाएँ प्राप्त हैं उनका भी यहाँ निर्देश कर देना आवश्यक है।

१७ वीं शताब्दी में बीकानेर महाराज रावसिंह जी के धार्मिक गुरु कवि ने "दानार और मुमका स वाद बनाया जिसकी प्रति हमारे स ग्रह में है। मारवणी मालवणी

स वाद नामक एक सुन्दर रचना जिममें मरु घोर भालव सम्बन्धी विशेषताओं का वणन चित्रा की स्थियों के मुह स करवाया गया है जिस में राजस्थान भारती' में प्रकाशित कर चुका हू। गुरु चन्दा स वाद ता राजस्थानी भाषा की बहुत सुन्दर नान बद्धन मुक्तक रचना है। एक पद्य म तीन चरण में तीन तीन बातें चेला स पूछी जाती हैं और चौथे चरण में तीनों का उत्तर चेला गुरु को दे दता है। ऐसे प्रत्येक पद्यो का समग्र ही राजस्थान भारती' म प्रकाशित कर दिया है। कुछ अन्य सम्वाद — 'उन्दर मिनकी सम्वाद' 'सोना गुजा सम्वाद' आदि भी मिलत है जिनमें सोना गुजा स वाद तो गद्य म लिखा हुआ प्राप्त है।

हिन्दी म भी कवि नागरीदाम के कई वाद-तल तबोलका वादु वादु मगनदानिका ननकानका लोहे सोन का, लज्जा मुष्ट का आदि अन्तर दरबार के हिन्दी कवि में छत्र चुक हैं। अन्य नात हिन्दी वादो का परिचय निम्नोलिखित है —

हिन्दी सवाद्य प्रथ

- | | | |
|----|---|--------------------------|
| १ | केति गोतम सवाद | दिगम्बर १० पृथी बडा भडार |
| २ | मन जान स ग्राम ६४ पद्य | |
| ३ | भरत बाहुबलि सम्वाद (अपभ्रंश) | , |
| ४ | जाता कामिका विवाद | |
| ५ | सुमति कुमति का भगडा | " |
| ६ | मन जान स ग्राम सवाराम | सूणकर पाडया भडार |
| ७ | ग्राम ीव का भगडा | |
| ८ | जीव कम स वाद | , |
| ९ | मन जान का स वाद सालचन्द | , |
| १० | वादु लोहे सोने का (१३ म०) नरहरिदाम १७ वीं गतात्री | |
| ११ | नन कान का वाद (६ पद्य) | , अकवरी दरबार के हिन्दी |
| १२ | तल तरोन का वादु (८ पद्य) | " कवि म प्रकाशित |
| १३ | मगन दानि का वादु (१० पद्य) | " , |
| १४ | लज्जा और मूय का वादु (१० प०) | " |
| १५ | सोस चरण म वाद पद्य ३२ प्राग्गनाथ | " , |
| १६ | रितु सभाव स वाद ४० पद्य कलपति मिश्र | |

१७ मुरूप कुरूप स वाद कुलपति मिश्र

१८ विप पियूप स वाद "

१९ रूप गुण स वाद ६४ पद्य

२० क्यामा हिरदे स वादो

२१ स्वण मुक्ता स वाद

२२ बाहु गोरी सावली चतुरभुज दमोधी

२३ सोने सोहे का भगडा

अथ उपलब्ध जैन सवाद्य अथ

१ भजना सुन्दरी सवाद १६८६

२ धामि कान स वाद

३ अद्यम कम स वाद १६९८

४ कर स वाद १५७५

५ कर स वाद १७४७

६ कस्तूरी-कपूर स वाद

७ काया जीव स वाद गा २५

८ कृपण-नारी स वाद गा ८ १५ वी दानाङ्गी

९ गोरी सावली गात ६३

१० जीम-दाग गा ४१ १६४३

११ दानाङ्गी सवाङ्गी १६६२

१२ नेमिराजमती सवाङ्गी १८३६

१३ पञ्च समवाय सवाङ्गी

१४ पञ्चेन्द्रिय सवाङ्गी १७५१

१५ पञ्चेन्द्रिय सवाङ्गी

१६ मोता-कपासिया सवाङ्गी १३२६

१७ मोती कपासिया सवाङ्गी १६८६

१८ यौवन जरा स वाद

१९ रावण मदोदरी स वाङ्गी १५६२

२० " " "

अनूप म स्मृत लाइब्रेरी

ना० प्र० सभा

"

"

नूण सागर

सहज सुन्दर

कुशलपीर

लावण्यसमय

अभयसोम

मुनिगील

दाम

अभय जन प्रयालय

अभय जन प्रयालय

लावण्य समय

हीरकलश

समयसुन्दर

अमृत विजय

विनय विजय

बालचन्द्र

रूपचन्द्र

हीरकला

श्री सार

मन्नासुन्दर

लावण्य समय

राजकवि

२१ रावण मंदोदरी सवाद		त्रिनहर्ष
२२ " "		सुधनहप
२३ लोचन काजल स वाद		जयवत
२४ समकित गीत स वाद		भक्तिभूरी
२५ समुद्र कलय स वाद	१७५५	उदय विजय
२६ समुद्र वाहण स वाद		यशोविजय
२७ ज्ञान दान परित्र स वाद	१८२८	विश्वलक्ष्मीभूरी
२८ जिह्वा-दात स वाद		नरपति
२९ सुखद-वपक स वाद		देगाई स ग्रह
३० भरत वाहुमनी स वाद पद्य ८६	१८ वीं शता	"

३१ रावण मंदोदरी स वाद	१६ वीं शता	महिमा भक्ति मंडार
३२ दाता सूर स वाद	१७ वीं शता	बस्ता स • ७७
३३ मारवणी मालवणी स वाद	१८ वीं शता	प्रकाशित
		अमय जन स-पालय
		प्रकृत राजस्थान भारती

इस प्रकार सामू बहू स वाद गुरु शिष्य स वाद उत्तर बिस्ती स वाद मोती सोना स वाद प्राणि उपलब्ध हैं । अनेतर कवियों के भी रावण मंदोदरी स वाद, दातासूर स वाद, मारवणी मालवणी स वाद हमारे स ग्रह में उपलब्ध हैं ।

दवावैत सज्ञक रचनाएं

हिंदी भाषा मूलतः मध्यप्रदेश की भाषा है और उसके विकास में मुसलमानों का भी काफी योग रहा है। जब उनका शासन यहाँ प्रवर्तित हो गया और प्रभाव जम गया तो उनकी भाषा अरबी फारसी के अनेकों शब्दों का प्रचार राज्य सभ्यता से हिन्दू जनता में भी होने लगा। इसलिए १४वीं शताब्दी से हम अपने प्राचीन भाषाओं के शब्दों में अरबी फारसी के शब्दों का क्रमशः प्रचुर प्रयोग पाते हैं। इपर मुसलमानों की भी जनता में सम्पन्न बढ़ाने के लिए स्थानीय भाषा एक बोलियों को अपनाया गया और इन तरह के आदान प्रदान से कुछ नये रचना प्रकारों की परम्परा भी चालू हुई। उनमें से एक प्रकार 'गजल' का है। १७वीं शताब्दी में नगर बलुनात्मक गजल सग्न रचना प्रकार का प्रादुर्भाव हुआ दिखाई देता है। हिन्दी के कवि जटमल नाहर ने चाहोर गजल, किंगार गजल और सुन्दरी गजल सभ्य १६८० के आसपास पञ्जाब में रहकर बनाये उनके अनुकरण में अनेकों जन कवियों ने १८वीं और १९वीं शताब्दी में एसी तरह बलुनात्मक पचासों गजलों बनायीं। १९वीं के उत्तरार्ध एक २ थी में ती चारण भादि कवियों ने भी उनका अनुकरण किया। यद्यपि अरबी फारसी में जो गजलें प्रसिद्ध हैं वसी बली इन नगर बलुनात्मक गजलों में नहीं है पर आखिर जटमल, जिसने अपने चाहोर बलुना को 'गजल' की सग्न दी है उसके सामने पञ्जाब में वसी कुछ रचनाएं अवश्य प्रचलित होनी चाहिए। अभी तक उसकी पूर्व परम्परा का अनुसंधान नहीं हो पाया।

इसी प्रकार फारसी का एक और रचना प्रकार १७वीं शताब्दी से हिन्दी में विकसित हुआ। उसकी सग्न है 'दवावत'। पञ्जाब में 'वेतों' का प्रचार तो काफी रहा है, मेरे सग्रह में भी दो वेतों हैं पर "दवावत" सग्न बानी जिनगी भी रचनाएं अभी तक प्राप्त हुई हैं वे सब राजस्थान के कवियों की हैं और विवेकता यह है कि इनकी भाषा प्रायः पठनी होती है। फिर भी हिन्दी के विद्वानों को तो उनका परिचय कदाचित् ही होगा, क्योंकि अभी तक वे मग्न दवावतें अप्रकाशित ही हैं और वे राजस्थान के भद्वारों में ही मिली हैं। मग्न बली क इस रचना प्रकार के सम्बन्ध में अभी तक हिन्दी ससार में अज्ञानकारी रहना, अवांछनीय समझकर इस अज्ञात और नई दिशा में प्रकाश टानने के

निए यह लेख लिखा जा रहा है।

दवावत ब्रह्म का अर्थ अभी तक मुझे उर्दू भादि के ब्रह्म ग्रन्थों में प्राप्त नहीं हुआ और न फारसी छन्दों सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण हिंदी ग्रन्थ 'छन्द रत्नाकर' जो मुझे दिल्ली के दि० जनशास्त्र भंडार से मिली है उसमें ही इस रचना प्रकार का विवरण मिला। पर यह निश्चित है कि इसकी परम्परा अरबी फारसी से ही सम्बन्धित है और विशेष सम्भव पंजाब से ही इस रचना प्रकार का राजस्थान में प्रचार हुआ होगा। राजस्थानी भाषा के सुप्रसिद्ध छन्द ग्रन्थ रघुनाथ रूपक में ७२ प्रकार के हिमाल गीतों के लक्षण और उदाहरण देने के बाद मछ कवि ने दवावत के दो प्रकार और उनके उदाहरण दिये हैं। यथा —

बहु बोहोतर मछ कवि गीत प्रबन्ध गिनाय ।
राग लिख गएन कछ दवावत समझाय ॥

तय मछ कवि हूँ तिक, दवावत विष रोय ।
एक 'मुद्द बन्ध' होत है एक मछ बन्ध' होय ॥

टीकाकार ने इसकी विशेष व्याख्या में लिखा है —
विशेष — यह कोई छन्द नहीं है, जिसमें मात्राओं वर्यो अथवा गणों का

विचार हो, यह अस्थानुप्रास मध्यानुप्रास और किसी प्रकार सानुप्रास का समक लिया हुआ गद्य का प्रकार है। यह सस्कृत भाषा प्राकृत भाषा उर्दू भाषा और हिंदी में भी अनेक कवियों और ग्रन्थकारों द्वारा प्रयोग में आया हुआ मिलता है। प्राथमिक सत्सुलासजी के प्रेम सागर आदि ग्रन्थों में तथा उर्दू के नहारव सिया नीवतन आदि ग्रन्थों में तथा फारसी के ग्रन्थों में भी देखा जाता है। सम्भवतः हिमाल वालों ने भी उनका अनुकरण किया है। यह दवावत दो प्रकार की होती है एक मुद्दबन्ध अर्थात् पद बन्ध जिसमें अनुप्रास मिलता है और दूसरी मछ बन्ध जिसमें अनुप्रास नहीं मिलता।

यह दवावत का उदाहरण —
अथ दवावत पद बन्ध —

प्रथम ही अष्टौद्या नगर जिसका अणाय ।
बार जोजन तो चौडो मौल जोजन की छाव ।
घोतरफू के फलाय चौसठ जोजन के फिराय ।
तिसक तलें सरिता सरिजु क घाट ।

- घत उतावल स्रु वहे, चौसर कोसों के पाट ।
 घडा बडी किताबू मे, जित गया का बछाण ।
 केतो बार नगरी हूँ, मेती निरवाण ।

२ गद्य बद्ध का उदाहरण —

बूहा — बहे मद्य इतरी कही, पव बाघ नाम प्रबध ।

दवापत फिर डूतरी, कहूँ हम गदबध ।

उदाहरण — हाथियों के हलके लघु ठाणा ल लीले ।

छेरापत के साथी भद्र जाति क टोले ।

घत देहु क दिग्गज विम्पाचल के सुजाव ।

रग रग चित्रे सुडा उडू के बणाव ।

भूल की जसुमे यौर घटुक ठणक ।

घावलों की जगमवा भरे भौरों की भकी भल के ।

बल कबमु के लगर मारी कनक की हूँ स ।

जावाहर के जेहर बीप मासा की रुस ।

भासू के घाटम्बर बहुत तरफ कू भाधे ।

माहुत न गज घँसा हालर कर राधे ।

बरसू बरसू के बिलास खेतु में कायन ।

मारसी से मजुल मूकमलु से मुतापन ।

बर बागु के साचे बल राउसी धाव ।

खुर सासु के भमके सत सिपा के सिलाव ।

घाउ जाउ मे चकी निरत बरवे में हूर ।

जग जगु में धरीत, सासोतक में पुर ।

दवावैत सम्बन्धी छन्द प्रथ, व उदाहरण देकर अब हम प्राप्त दवावयता का सक्षित पारिचय उपस्थित कर रहे हैं ।

१ उपलब्ध दवावयता में सबसे छोटी घोर पुरानी रचना "नरसिंहदास गोड की दवावयत" है, जो माट मानीदास गंगादास ने पाँच १ बही है, इसका प्रारम्भिक घन तो राजस्थानी में है, भाग का घन खड़ी बोनी में है । दोनों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं —

अथ दुवावत नरसिंह दास मोड बी ।^१

भाट मालीदास गंगादास रे पोत रे कही ।

भादि— होंदवाए छत हींवाए सूर, अजमेर ओधपुर मालपुर ।

अजूवाल वश असवा अरोड दोलदो मोच महिपद्या मोड ।

मध्य— सवा मरदां जागता है, जगत न बलतौ जागता है ।

भोमिया अनु भागता है, तरी गिरीं आलागता है ।

नित वान त्यागते हैं, यो सूर बबते हैं ।

असनान सभते हैं, सवा विस्तरते हैं ।

पूजा पारते हैं, बहली बारते हैं, सहलो सिधारते हैं ।

अत — राज राज नरसिंह जेत कवि मालीदास कहे दवावत ।

इस रचना की प्रति १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की लिखी हुई धनुष संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में है अत १७वीं के अत या १८वीं के प्रारम्भ की यह रचना है ।

२ दूसरी रचना जन कवि राम विजय (सुप्रसिद्ध नाप रूपचन्द) द्वारा रचित 'जिन सुख सूरि दवावत मजलस नामक है जो सम्बत् १७७२ म रची गई है । उसमें मजलस और दवावन दोनों समाए साथ साथ दी हुई हैं । रचना बहुत छटादार है ।

भादि — अहो आओ रे पार बडी बरवार ।

स चांदनी रात, मजलस की बात ।

कही कौण कौण मुलन, कौण कौण राजा बेल ।

कौण कौण पातिसाह ? देखे

कौण कौण बईवान बेले ।

कौण कौण महिरमान बेले ।

१ चारण कवि किसना जी आढा रचित 'रघुबरजम प्रकाश प्र० राजस्थान पुरातत्व मन्दिर के पृष्ठ ८५ में दवावत का उदाहरण ता दिया है पर लक्षण नहीं बतलाया गया है ।

दवावत फिर बात दल, जुगत नचनका जाण ।

औड अचरु तुक असम पे, नीदग गद्य बमण ॥

अथ दवावैत

महाराजा दशरथ ऊ घर रामचन्द्र जन्म लिया ।

जिस दिन से आमरु न उदेग देरु, ने हरस किया ॥

दिल्ली बर्खवान फरहशाहि सुलतान बेले ।

बोलीह सप्रामसिध बीवान बेले ।

जोधाल राठोर राजा अजित सिंह बेले ।

बीकान राजा सुजान सिंह बेले ।

अमेर बख्शवाहा राजा जयसिंह बेले ।

जतारण जादव रावल बुर्पासिंह बेले ।

ए कसे ह ? बडे सुविहान ह, बडे महरबान ह ।

बडे सिरदार ह, बडे बजरार ह बडे दातार ह ।

जनों आसमान बीच शशु (क) भवतार ह ।

अत — श्री पूज्य जिन सुखसूरि आई पाट विराजते ह ।

इत से छाजते ह, भम कया कहते गाजते ह ।

३ तीसरी मजलस जा इसा बली की है पर है बहुत विस्तृत । अभी तक आत सभी बनावतों मे यह सबसे बड़ी है । जिसका परिषय आने दिया जा रहा है— राजस्थान के सपागच्छीय बबि बनबकुशल और कुवरकुशल दोनों गुरु शिष्य १८वीं के अत म कच्छ-भुज पहुँचे और वहा के महाराज लखपत न इह अपना गुरु मान कर बहुत आदर के साथ वहा रह लिया । राज लखपत ने साहित्य और काव्य की शिक्षा इनसे ग्रहण कर ब्रज भाषा म कुछ ग्रंथ भी बनाए हैं साथ ही उसने एक ब्रज भाषा का विद्यालय भी इन जैन महात्माओं के सत्वावधान म चालू कर दिया । जिसमें रहने, खाने आदि का प्रबन्ध राज्य का ओर से था । इस सुविधा के आकषण से राजस्थान गुजराम और सोराष्ट्र के अनेकों छात्रों न आकर वहा वाच्य कला और साहित्य शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की । महाराज बनबकुशल और कुवरकुशल ने ब्रज भाषा में लखपत नाम माता परसात नाम माता (फारसी शब्दों का बोझ) ये दो कोश और लखपत पिंगल, मोहड पिंगल नामक छन्द ग्रन्थ, लखपत जस सिधु नामक अलंकार ग्रन्थ और सुन्दर शृंगार आदि की टीकाएँ बनाई । महाराज लखपत का बहुत विस्तार से सुन्दर वरुण कुवरकुशल रचित "दवावत म मिलता है ।

इसकी प्रति टिप्पणीकार स्वयं कुवरकुशल की लिखी हुई मुनि पुण्य विजय जी की कृपा से दलत की मिली । रचना सन् १८०० के आस पास की है ।

४ चौथी रचना 'जिन नाम सूरि बनावत' अरतर गच्छीय कवि वस्तपाल (वाचक

विनय भक्ति) रचित हमारे ज्ञ ग्रह में है इसके प्रारम्भ मध्य और अन्त में कुछ पद्य भी हैं यहाँ यचनिका गद्य का ही कुछ उदाहरण दिया जाता है —

ऐसी पचावती माई, बड़े बड़े सिद्ध साथियों ने प्याई ।

तारा व रूप बौद्ध शासन में समाई ।

गौरी के रूप शिवमत धालो ने माई ।

जगत में कहानी हिमाचल की जाई ।

जिस ध्यान में सरस्वती हैं का न रहा सागरा ।

तो और कवीश्वरों का क्या विचारा ।

पर जिन जिन की जसो उक्ति, और जसो तुष्टि की शक्ति ।

तिन माफ्य तुम बहुत कह्या ही चाहिए ।

बड़े बड़े कवीश्वरों की उक्ति बेलि हिम्मत हार में बड़े रहिए ।

यातें सब गच्छ राजन के महाराज गच्छाधिराज श्री ।

जिन लाभ सूरि दवावत कही गुन पाया ।

अपनी पविता पुनि स्वामी धम का फल पाया ।

जिन लाभ सूरि का समय सवत् १८०५ से १८३४ तक का है अतः इस दवावत की रचना स० १८१० और १८२० के बीच की होनी संभव है। उपयुक्त चार दवावतों में से पहली भाट कवि की है और पिछली तीनों जन कवियों की है। जन कवियों की इसके बाद की कोई रचना नहीं मिली और न किसी भाट कवि की ही। अब प्रागे ४ चारण कवियों की दवावतों का परिचय लिया जा रहा है।

५ चारण कवियों की दवावतों में महाराजा अजितसिंह की दवावत सवत् १७७२ में रची गई। इसकी सब प्रथम सूचना मुझे श्री सीताराम जी लालस से मिली और इसकी प्रतिलिपि राजस्थानी भाषा के प्रबल समर्थक कवि उदयरामजी उज्जवल से मिली। मैंने जब उह इसकी नकल भजने के लिए लिखा तो उन्होंने स्वयं अपने हाथ से १६ पृष्ठों में नकल करके तारीख २८-१-२६ को मुझे भेज दी, इसके लिए आपका मैं विनम्र धन्य से आभारी हूँ। उसके बाद मैं अपने विद्वान डॉ० दशरथ शर्मा से दिल्ली मिला तो उनका पास पड़े हुए हस्तालिखित ३ गुटके देखे सयोगवा उनमें से एक गुटके में अजितसिंह जी की दवावत मिली और दूसरे दो गुटकों में भी एक एक अन्य दवावत प्राप्त हुई। अतः तीनों गुटकों में अपने साथ ले आया, इसके लिए मैं डॉ० दशरथ जी का आभारी हूँ।

चारण कवियों में वदावैत की परम्परा इसमें पहले भी रही होगी पर मुझे उपलब्ध तोनों दवावतों में जायपुर के महाराजा अजितसिंह जी की दवावैत ही सबसे पुरानी है। इसमें प्रारम्भ मध्य और अन्त में १२ दोहे, ३ कवित्त, और दो गायण भी मिलती हैं बाकी वगुण तुकान्त गद्य में हैं। प्रारम्भ और अन्त इत प्रचार है।

अथ दवावैत महाराजा श्री अजितसिंहजी की —

सोहा— मन बुध मिल कोषो भतो, सिवरां धाद पणुंश ।

महाराजा अजयपाल मे, अङ्गादम्बर कहेस ॥

देवा भगवाणी जगु, सेवा सन सुखान ।

दवावत धादि विवो, अद्या वयण विसार ॥

अथ गणपत गुण धाम विगत कूँ प्याऊ ।

(जिन) चौरासी अथ दवग जात जात के बहु जनाऊ ॥

ऐसा भी धरणी सिध बुध का राजा ।

उक्त का अम्बार मुक्त का दरवाजा ॥

सतीस ऊँच देवता का भगवाणी ।

अरु सा पिता माता भी दहारी ॥

भेक ही बत्ता हृत्ति का सा भानव ।

सिंहूर का टांजा मूसा सा बाहुत ॥

धिवर सीना भी दरवाज सा उदर ।

अरु ही सारसा प्यारहवां अरु ॥

ऐसा भी धरणी की प्रथम नमस्कार कीने ।

राजान के राजा महाराजा श्री अजयपाल कू दवाभैत कहीज ॥

कुमरा नमस्कार सरस्वती कू करस्या ।

कुपत की दाता, कुपत की हरस्या ॥

हस गवनी हस घाहनी देवी ।

सुर नर नाग गण गणव सेवी ॥

मध्य— महाराजा अजयपाल भावता की भावता,

अनभावता की नटनाला कहना,

क्या कहावला, बादाएँ भी राव नानाएँ भी राव ।

बडों की बडाई पुरुषों की प्रभुताई सब सरां सुखाई,
 रोऊ मोज पाई महोला लिया, अबहल किया ।
 क्रोड क्रोड रा किलाए कोड दिवाली राज ।
 जशवत तिह मजसिहोत राऊ मरुधर राज ।

अत— दवावत द्वादश दोहा, तीन कवित्त दोय गाह ।

सतरह सो बहोसर कव इवार कटियाह ॥

डा दशरथ जी के मुठके के पत्राव ६१७ में लिखी हुई है द्वारकादास घषवाडिया की कही हुई 'द्वाषत महाराज मजितसिह जी रो' प्रति एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ते के सग्रह में भी है ।

६ चारण कवि रचित दूसरी दवावत बीकानेर व महाराजा सरदारसिह जी की है । यह काफी बडी है । इसमें राठोडों की वधावली स प्रारम्भ कर महाराजा सरदारसिहजी तक का बखान किया गया है । इसमें भी प्रारम्भ और मध्य में दोहा कविन दिये गये हैं । गद्य की सहा 'वचनिका' दी गई है । मुझे या मुक्ता प्राप्त हुआ है उसमें ३१ पत्र हैं बाद २६ तक पत्र नहीं है । इससे पत्र का अंग जो इनी बीच पूरा होता या वह प्राप्त नहीं हो सका अत कवि का नाम और रचना काल अज्ञात है । प्रारम्भ और मध्य का कुछ अंश नीचे दिया जाता है —

अथ दवावत महाराजा श्री १०८ सरदारसिह जी रो लिखते—

दोहा— बडी धी गणपत विमल प्रापहु सु बुप उवार ।
 कमघेदवर क जस बहु अपनी मति अनुसार ॥
 बखमास के मध्यवर जुगल बख रमजान ।
 कारण त्यों सब वग के महूर दीघ कुलभाल ॥
 उद्ध गमन जुष बख के सब बखन पे होय ।
 कुल सब ही पे भानू कुल कहे उद्ध व सब कोय ॥
 बख प्रथम जिह वगवर रिब कुल भुप उवार ।
 जाकी जुग जाहूर जगत सबला पन सत सार ॥
 अविनागी अवय अलख धादि पुरुष अखलेग ।
 तिह नामि अम्भोजते धतुरानन उपजेस ॥

अथ वश सूचित वचनका—

हरण गर्भादि सुवित्रात् अथहरणे ।
 वर विध रवि वश वेदव्यास मुख वरणे ॥
 एक गत तेवीस पुस्त गिनती परवान ।
 जग खसक वश सुवित्रात् भये जान ॥

मध्य— ए दरह से पीतालभौ, सुध गीशाल सुमेर ।
 यावर बीज धरपियो, बीके बीकानेर ।

वचन का— जिस बीका ने बीस भोमिचार तोड़ कर अथना राज बंधे ।

फतह के निशान धरसत स धे ॥
 पीछ राव जोधा के तिलक छत्र सुजा ने पाए ।
 जाकी सुन दलबल सज विक्रम भी धाए ॥
 अस्सी हजार फौज से राव कूच किया ।
 साग तरफ दखल से बाहर छूट लिया ॥
 जशमादे हाडी भां से दिन चढ़ पाये ।
 सुत री सरसाध नेह नीक सपभाये ॥
 पीछ राव भाजी का कहा मान लिया ।
 सेके पूजनीक धरत्र कूच सेन किया ।

तीसरी चारणी दवावत बीकानेर के प्रसिद्ध और इतिहास लेखक सदायच दयालनास ने अपने अंत दलाकर नामक इतिहास अथ म दी है यह भी अपूरी ही मिली है । अनूप सफुत लायब्ररी में सम्भव है पूर्ण मिल जाय । इसकी रचना भी बीकानेर के महाराजा श्री रतनसिंहजी का बखन इसमें होने से १६ वी (उन्नीसवीं) शताब्दी के अन्त में ही हुई है ।

आदि बोहा— अतुत विष तहाँ वरखे सुखद नृप अमियेक विधान ।
 वरणी नृप नृपता विमल, पर यम्ब अंत प्रमान ॥

अथ दवावत— अणपति बीज बुध उक्त का ज्ञान ।
 मैं गाऊ बीकानेर पति अथवान ॥
 पारथ से वरणा धती भारत भीम ।

पौद्यत परमारय क सुदाता के सोम ॥
 यचनों के दरवासा सील क गयेल ।
 तपस्या के मृत्यञ्जय रावन अभिमेल ॥
 मध्य— जित धमा में महाराज के कविराघ ।
 धिजा के झामर जग रस के विभाव ॥
 कस्यप सँ उत्पति धाररटे मात ।
 दिनकर पुराण व्यास धरण विख्यात ॥
 गीत के सदन जुत धम की मरजाद ।
 घट भाषा जाणवर धमय कुत प्राद ॥

चौथी रचना दुरगादत्त कवि की है। जिसकी सँ प्रथम सूचना मुझे डॉ० प्रचल
 शर्मा क धीसिस स मिली कि इसकी प्रति डा० मधुरालाल जी शर्मा के पास है। उनकी
 मित्रे दो-तीन पत्र दिये पर प्राप्त न होन से डॉ० प्रचल शर्मा स ही नकल मगवाई। फिर
 तो श्री सीताराम सालस से विदित हुआ कि इसकी हस्तलिखित प्रति उनक पास भी है
 श्री प्रचल शर्मा की प्राप्त नकल में स्थानों और व्यक्तियों के नाम छोड़ दिये गये हैं। पर
 उनकी सूचनानुसार यह इसरदा ठिकान स मिली है। १६वीं उतगढ या २०वीं के
 पूर्वाड में दुर्गादत्त धारण किसी ठिकाने में कुछ प्राप्ति की आगा से पहुँचा, पर उस वहा
 उचित पुरस्कार नही मिला उससे सीज कर उसने यह नि'दात्मक दवागीत बना ली।
 प्रारम्भ मे ही कवि कहता है —

पूव की तरफ राजावटी देस ।
 रोहू का रवास भाहू का भेश ।
 जित देश मे ईसरदा नाम का गाँव ।
 मेघफूँकों का बास । घुरतों का धाम । मगतू का—
 मोहस्ता, कपालू का कोट । हीजड़ू का सहर,^१
 जाह का जोट, घुगलू का चधूतरा, सगलू^२ का
 रवास । कुकरलू का कोठार, घध्रलू का^३ ऐवास ।

भुक^४ का भाँडा, मानजाहू का मुकाम । अनीत का असाडा

धतूनों का धाराग । हराम का हटवाडा । हराम चाबू की हाट
 खोदू का खजाना । परेतू का घाट । विपत का बगीचा ।
 बुराई का धात । काल का कुञ्जाला । मरी का मेवास ।
 ठगू का डिङ्गाण, सौदू की सराय । पाप का पुवाडा ।
 बसतो का बलाय भूता का भण्डार । तीकोरियों का सहायक ।
 झाकणियों का बरवार रोग का रजवाडा । लोग की सिरकार ।
 कापक की कुटी । चोरू का धायार ।

धत— राजारत रघुनाथ रो किरह हृदीवय ।

देवी जिनको वेदक दाखी दुरगादत्त ।

डॉ० प्रचलजी ने इसे दवा लेन गद्य का बहुत उत्तम उदाहरण बतलाते हुए लिखा है कि इसका गद्य बयण सगाई की अनुपम छटा है, बलुन यही गद्य की प्रवृत्ति का प्रतीक है, इस प्रकार के गद्य से पता चलना है कि राजस्थानी गद्य में पद्य के अनुकरण पर धर्यानुप्रास, मध्यानुप्रास या किमी ॥ य प्रकार के अनुप्रास व यमक आदि की छटा देखने को मिलती है । पद्य में पाये जाने वाले प्रसिद्ध अलंकार बयण सगाई इस गद्य में भी मिलता है, जो गद्य यही की प्रवर्णा का प्रतीक है ।

बारहठ दुरगादत्त रचित नत की एक प्रति कलकत्ता की ऐतिहासिक सोसाइटी के संग्रह में राजस्थानी विभाग प्रति न० पी० ३६ सी० में है ।

उसका उदाहरण सूची पत्र में इस प्रकार दिया गया है—

धत बारहठ दुरगादत्त रो कही—

एक रम हम सोमा हू नय न्वाव पाया ऐन ।

वजगाह की हर धम्त तें फिर न्हम साथ बन ॥

एक प्रजय एसातक धाम या परवस्त भ्रादम बार ।

रयव मुलम दरगन बीच रसते गाय चन्त फुटार ॥

बारहठ दुरगादत्त की धय रचनाएँ भी बगल हिंदी मण्डल में प्राप्त हैं । ऐतिहासिक सोसाइटी के संग्रह में धय दजारत रामजी श्री भगवानदासजी रो बारहठ मुगाण रो क्विमी नामक रचना की प्रति भी है । सूची में उसका आदि अन्त इस प्रकार दिया है—

मय बूहा— सरस्वती प्रसा पुत्री बीज उक्ति बर्ताई ।
 भूप बलाएँ रायएँ तथा दवावत गुण माइ ॥१॥

मयरी नन्दन गज यवन, घ घखर उपवेस ।
 बायाएँ भुयपति गुणै रिमी देगएँ जगरेस ॥२॥

भक्त बोहा— मायोरष राजा का वू सोह जालएँ विघ ।
 मे मति सारं माहरो बुवावत गुण किय ॥१॥

बगाल हिन्दी मण्डल के रजिस्टर न० १७ में एक दवावत होने का उल्लेख है पर वह किसके द्वारा रचित है इसका विवरण सूची में नहीं है ।

इसके प्रतिरिक्त सरस्वती भटार उदयपुर के सग्रह में कुंवर मधामनिह या महाराणा उदयसिंह की दवावत है जो मेवाड़ी भाषा में है और प्राप्त प्रति सबत् १८९७ की मिली हुई है । इस रचना का परिचय शोषपत्रिका वष ८ अंक १-२ में प्रकाशित हो चुका है । सम्भव है अधिक अनुसंधान करने पर और भी कुछ ऐसी रचनाएँ प्राप्त हो जाय । हिन्दी और राजस्थानी इन दोनों भाषाओं में दवावतों का पाया जाना विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उनमें कई रचनाओं में वल्लभ बहुत सुन्दर है । भाषा और शैली भी बड़ी सरस एव सजीव है ।

अन्य उपलब्ध दवावतों की सूची इस प्रकार है —

- १ दवावत भीमजी विठ्ठलदासोत गोठ री— महेशदास राव— १७१५-१७१० के मध्य
- २ दवावत मलमाल देवडा री— मेहरू विहारीदास— १६७४-१७१०
- ३ दवावत चारणकवि कविया करखीदानजी री बही (सूरज प्रकाश में) — १७८७
- (म) जोधपुर नगर वल्लभ (घ) यह भाषामय प्रांतोत्प्रेक्ष
- (ङ) हस्ती वल्लभ (ई) सरबिलद तान की सनिक तयारी
- ४ दवावत भासिया बखतरामजी री बही (रूपय दीवण भीमसिंह जी का में)
- (घ) राज्य भवत वल्लभ
- (घा) भाषेट वल्लभ
- ५ दवावत उदयपुर नगर वल्लभ— भाटा किसना— (मोविलाम छ० ६७४)
- ६ दवावत देवीसिंह चू डावत री— मादा वृपाराम
- ७ दवावत महाराणा ज्वानसिंह जी री— भासिया तेजराम

- ८ दवावत भाशिया बन्धुराम रो कहो (कीरत प्रकाश में)
- ९ दवागेत स्वा सरूपदासजी रो कहो— (पाठव यशेंदु चड्डिया में)
- १० दवावत डा० देवीसिंह मगतावतरी कहो (मुजानसिंह जी री बात में)
- (अ) मुजानसिंह जी का गलसिख वणुन स० १६१०
- (भा) भइव वणुन (इ) दासत्र वणुन
- (ई) सजना सौदय वणुन
- ११ दवावत म० गभूसिंहजी र ताजेरी सवारी री— (शभूजमप्रदान में)
- कविराज बरतावरसिंह जी— स० १६२१
- १२ दवागेत राव गिरवरदान री कहो (ग्रन्थ गिवनाय प्रकाश में)
- १३ मुपना भाव गोन— कविराज गुमान जी
- १४ दवागेत रामदयाल री— अज्ञात*

अभी तक यह समस्या सुलभ नहीं पाई है कि ऐसी दवागेतों की रचने की प्रेरणा राजस्थान के कवियों को कहा से मिली और प्राथमिक रचनाएँ जब हिन्दी प्रधान हैं तो हिन्दी के क्षेत्र में ऐसी रचनाएँ रची जानी चाहिए, पर वे प्राप्त क्यों नहीं हैं ? प्राचा है भविष्य में इस दिशा में विशेष अनुसंधान होगा ।

सलोका संज्ञक रचनाएं

राजस्थान और गुजरात में विवाह के समय वर और जनतियों द्वारा सलोकें (देवी देवताओं के एक विशेष प्रकार के छंद) बहने की प्रथा है। शहरों में तो यह महत्त्व प्राप्त है, पर गाँवों में अब भी प्रचलित है। इसकी परंपरा कितनी प्राचीन है, इसका पूर्वकालीन रूप क्या था वतमान सलोकों का विकास कब से व किस प्रकार हुआ, इस संबंध में प्रस्तुत लेख में विचार किया जा रहा है।

मुनि लावण्य समय के 'विमल प्रबंध' ग्रंथ में इस परंपरा की प्राचीनता सोलहवीं शताब्दी के पूर्व की सिद्ध होती है। इस ग्रंथ में विमल मंत्री के विवाह प्रसंग में वर के शोरण पर पहुँचने पर सलोकों के द्वारा प्रेरित होकर वर के दलोक बोलने का उल्लेख इस प्रकार है —

पूहता शोरणि जोई लोक, सोहया साला कहि सलोक ।

विमल चाँगी बखरो सोमली, क्या साला ते वह बिसे टली ॥६४॥

सौभाग्यवश मेरे श्वशुर में पढ़हवीं सोलहवीं सदी के प्रारंभ में वर के द्वारा ये सलोकें किस प्रकार कहे जाते थे ? इसके उत्तर के लिये एक रचना मुझे प्राप्त हो गई है। इसके अनुसार १६ वीं शताब्दी में वर अपने साले की सवोधित करता हुआ प्रारंभ में अपने भाराध्य देव, गुरु, कुलदेवी को, माता पिता, नगर, तत्कालीन शासक उसकी समाया परिकर एवं शोरण आदि क बखनात्मक सलोकें कहता था। प्राप्त रचना क अंत में गणेश व सरस्वती को सुख देने की प्रार्थना की गई है। बीच में विवाह संबंध क्या की प्राप्ति और साले की कौतुहल पूछ बरने आदि का उल्लेख है। इससे वतमान सलोकें के जाने वाली रचनाओं का पूर्व रूप मान हो जाता है।

सलोकें का मूल शब्द "दलोक" है। जन भाषा में सलोका या सिलोका शब्द प्रचलित हो गया है। इसकी रचना का प्रारंभिक कारण वर की शिष्टा एवं बुद्धि परीक्षा लेना रहा होगा। जब वर विवाह के समय समुराल जाता था, तो शोरण पर उसकी गिन्या एवं बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए साले के द्वारा कुछ दलोक कहे जाकर वर की कुछ

वखुनात्मक दलोक बड़े जाने की प्रेरणा की जाती थी और उसके उत्तर में वर कुछ दलोकों में अपने वन आदि का परिचय देकर अपनी प्रतिभा का परिचय देता था। इस लेख में वखुनात्मक रचना के प्रतिरिक्त सरदारगच्छ के शान्तिसागर सूरि और जिनसमुद्रसूरि के प्रवेश वस्त्र आदि के वखुन वाली दो राजस्थानी गद्य की विचित्र रचनाएँ हमें और प्राप्त हुई थीं, जिन्हें राजस्थानी (निबन्धमाला) भा० २ में हम प्रकाशित कर चुके हैं। उनकी पत्तियों का प्रारम्भ भी 'ग्रहो सालक !' इन शब्दों के सम्बोधन द्वारा होता है। अतः वे भी विवाह प्रसंग में वर के द्वारा सत्ते को सम्बोधित करके कही जान वाली दलोक रचना के रूप में ही बनाई गई प्रतीत होती है। जैनधर्म के बड़े ज्ञान भण्डार के फुटकर पत्रों में जिनभद्र सूरि और उनके शिष्य जिनचन्द्र सूरि की वखुनात्मक दो रचनाएँ हमारे भवलोचन में आई थीं। इन रचनाओं का निर्माण वरों ने नहीं किया पर जैन मुनियों ने उनके शीरण पर बोलने के लिये किया होगा। सभी वर कोई रचना करने वाले नहीं हुआ करते। अतः वे ऐसी रचनाओं की याद कर लेते थे और रटी हुई रचनाएँ प्रसंग पर बोलकर अपना काम निकाल लेते थे। आज वन भी यही होता है। जब सलोक वर स्वयं नहीं कहता, जानी एव मांडी, दोनों सम्बन्धी-जन परस्पर सलोकों की होड़ लगाने हैं। यदि वर पक्ष के जानियों को या वर के कुटुम्बी जनों को सलोकें नहीं आते तो वे हसी के पास होते हैं और वहाँ नीचा देवना पड़ता है। सत्रहवीं शताब्दी स-सलोकों के रचे जान की गली में अन्तर था गया। इस समय से ऐसे सलोकों के लिए एक छद्म रूढ़ि हो गया। जब संस्कृत में शलाक रचना न की जाकर भाषा में ही वस्तु रूढ़ि शैली में सलोकें बनाएँ जान लगे। १८वीं शताब्दी में यह प्रथा और भी अधिक बली और १९वीं में तो जोरों से अनेकों रचनाएँ बनीं। अभी तक जन जनेश्वर करीब ती के ऊपर सलोकें भेरे जानने में आए हैं। २० वीं शताब्दी में भी अनेकों सलोकें रचे गये और उनके कई समूह गद्य भी प्रकाशित हुए हैं।

जन मुनियों ने इस प्रकार की रचनाओं के निर्माण में बड़ी दिलचस्पी दिखाई। उनकी रचित रचनाओं का विवरण "जन-सत्य-प्रकाश" के कई अंकों में (मिरे एव प्रो० हीरालाल वापकिण आदि द्वारा) उपस्थित किया जा चुका है। जनेश्वर सलोकों की भी मैंने एक सूची तैयार की है। प्राप्त रचनाओं की सूची लेख के अन्त में दी जा रही है। ये सलोकें राजस्थानी भाषा में ही अधिक रचे गये हैं इससे सलोकों के बहने की प्रथा राजस्थान में ही अधिक रही प्रतीत होती है। पुष्करती भाषा व मनोक छोटे ही प्राप्त हैं।

सलोकों की शैली की राजस्थानी भाषा के छद्म-गद्य "रघुनाथ रूपक" में गद्य

काव्य का ही एक प्रकार माना है क्योंकि इसमें मात्रा आदि का इतना विचार नहीं होता । यह साधारण लोगों के द्वारा अधिक रचे गये हैं, जिन्हें काव्य निर्माण प्रणाली एवं दृष्टि का विशेष ज्ञान नहीं होता है । जैन कवि विद्वान् अवश्य थे, पर उन्होंने भी प्रचलित शैली को ही अपनाया । इन मल्लोक्तों में देवी देवताओं एवं चीरों के गुण बखाने की ही प्रधानता है । इनकी बोलने की विशेष लय है । उच्च स्वर में जब लय लय में सलोके बोलते जाते हैं तो सुनने वाले लोग बड़ी उत्सुकता के साथ टकटकी लगाये हुए उन्हें सुनते हैं । कई सलोक्तों में वीर रस की प्रधानता होती है । उनके सुनने से तो हृदय फटक उठना स्वभाविक ही है, पर अन्ध सलोक्तों में भी महापुरुषों से सम्बन्धित होने के कारण उनके चरित्रों का अमरकारिक बखान उठता है जो लोक प्रिय होता है । रघुनाथ रूपक के अनुसार यत्त वचनिका के समान सुभासत गद्य वाली रचना है । अन्त के तुक मिलने के कारण और शब्दों की सीमितता से यह गद्य गली काव्य जैसी ही लगती है, इसलिए हमें काव्यगत सलोका छद्म कह सकते हैं ।

रघुनाथ रूपक में सलोक्तों की शैली का उदाहरण इस प्रकार है —

बोलि सीतापत इतनी जो खाली, सुरवर नामा ने साथे सुहाएली ॥

सैतानल हलमत निमरी सरसाई, वीरां धवरां रो कीवी बडाई ।

धनुषर रा बायक सांभल जोवारा, पोरस धर्मो से अपियो धलवारा ॥

प्राणसे कर जोडी जीतव फल पायो मान धी खविद इतरो पुरमायो ॥

सबहवी गताब्दी से अब तक के रचित सभी सलोके इसी शैली में रचे गये हैं ।

प्राप्त सलोक्तों की सूची

- | | | | | |
|----|--------------------------------|--------------|----|-------------------------------|
| १ | अष्टापद सलोक्तो | विनीत विमल | न | १७३३ के पीछे |
| २ | आदिनाथ सलोक्तो | " | स | १७३६ से पूर्व प्र बनोका सग्रह |
| ३ | विमलमेतानो सलोक्तो वा | ११७ उदयरल | स | १७६५ रेखा |
| ४ | अपभ्रदेव सलोक्तो | जिनहप | १८ | वीं शताब्दी |
| ५ | कल्याणजी मलोक्तो वा | २३ माघव | | अभय जैन ग्रन्थालय |
| ६ | केसरियाजी रो सलोक्तो वा | ११ उत्तमचन्द | स | १८२६ कांति सागर स ग्रह |
| ७ | क्रोध सलोक्तो | | | प्र सङ्ग्रहामाला |
| ८ | अदरजा रा सलोक्तो वा | ५१ ननीराम | न | १८१५ प्र बनोका स ग्रह |
| ९ | उत्तममेरु चढ़ती दसा रो सलोक्तो | राजचन्द्र | स | १८ ८ अभय जैन ग्रन्थालय |
| १० | भूठाओ वपजी रो सलोक्तो | | | |

११	नेमिनाथ सलोको गा ४८	राजलाम	स १७१४
१२	" " गा ४९	जिनहर्ष	
१३	" " "	उदयरत्न	
१४	" " गा ६५	विनीत विमल	
१५	" " "	मोती मालु	स १७९८
१६	" " "	देवचन्द्र	स १९००

प्र स्तवन स ग्रह
 प्र श्मोका स ग्रह
 प्र गोविन्द मनसाली

२०	नेमी राजुल सलोको	कुशलविजय	स १७१९
२१	पादचन्द्र सूरि सलोको	मेघराज	
२२	पादवनाथ सलोको	जोरावरमल	स १८५१
२३	" " गा २६	गोपाल	
२४	" " गा ३७	दीनत	स १८४०
२५	मरत बाहुवली सलोको	उदयरत्न	

प्र श्मोका स ग्रह
 प्र सज्जमाय स ग्रह
 प्र "

२६	मान सलोको		
२७	माया सलोको		
२८	मघकुमार सलोको गा ७५	महानन्द	स १८२३
२९	सौर्वागा सलोको		

प्र सौर्वागाह
 प्र सज्जमाय स ग्रह

३०	सोम सलोको		
३१	बामुपूज्य सलोको गा ४०		
३२	विजयलक्ष्मी सूरि सलोको	त्रिनेद्र सागर	
३३	विमल मन्त्री सलोको गा १११	विनीत विमल	
३४	विवेक विलास सलोको	देवचन्द्र	
३५	धानीमद्र सलोको	सिंह	
३६	" " गा ४४	उदयरत्न	
३७	" " "		
३८	" " "		

१८ शीं शताब्दी प्र श्लोका स ग्रह
 १९३० प्र श्मोका स ग्रह
 १७८१ प्र रत्नसागर
 १७९० प्र सलोका स ग्रह
 प्र मय जन प्रयातक
 प्र जन सज्जमाय स ग्रह

ऋषि खोटा

३६ वालिभद्र सलोको १७५६ प्र सलोका सग्रह
 ४० सखेसवरजी का सलोका उदयरल १७८४ " "

४१ " " " " " " १७७०
 ४२ वालिनाथ सलोको गा ४३ मणिविजय भमरविजय १७७०
 ४३ सिद्धाचल सलोको सपवी प्रमजी ४ जैन युग

४४ हीरविजय सूरि सलोको विद्यावर

४५ सरस्वतीजी रो सलोको
 जैनतर सलोके

१ माणतो सलोको गगदास १७६३

२ रणछोड जी नां सलोको सामल मट्ट १७८१

३ रुस्तम नां सलोको " १७८१

४ सीतराम रावण सलोको गा १६ प्र सलोका सग्रह

५ चक्र महादेव सलोको गा ११ स १८३७ माघ वदी ३ "

६ मायवराव जी रो सलोको गा १६ " "

७ रामसापीर रो सलोको गा १२ " "

८ चांपावत सवाईसिंह सलोको गा २६ " "

९ भीमसिंह जी रो सलोको गा २१ " "

१० लक्ष्मणजी रो सलोको गा २२ १८५२ भमय जैन प्रयालय

११ भक्त जी रो सलोको गा ३ " "

१२ सूरजजी रो सलोको भमरच द स १८१० " "

१३ रामदेवजी रो सलोको " "

१४ कुचसिंह जी रो सलोको " "

१५ भमरसिंह राठी रो सलोको " "

१६ बालाजी रो सलोको " "

१७ अजीतसिंहजी रो सलोको " "

१८ जमलजी रो सलोको " "

१९ जामाजी रो सलोको " "

२० भमरच द सुराणा रो सलोको " "

मोतीचन्द खजांधी संग्रह में

करीब १५-४० वर्ष पूर्व प्रतापसगर पुस्तकालय जानना से "मारवाडी ब्याह में बोलने का सलोका" नाम से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमें १८ सत्रोंके प्रकाशित हैं। उनमें से एक को छोड़कर सभी के कर्ता पूनमसिंहवाल (डेंडा निवासी विप्र) है जिसने स० १९७२ से १९७५ तक में प्रकाशित किये हैं। केवल जाति सुधार का सलोका रामकिशन ने स० १९७३ जेठ वदी १३ को छोलापुर में बनाया है, वह इस सग्रह में छापा है। पूनम-सिंह रचित सलोकों के नाम इस प्रकार हैं।

१ गणपति जी रो सलोको	१० बाप बेटी रो सलोको
२ सुधार "	११ बेश्या रो "
३ कनौषी माता "	१२ सहमीनारायण "
४ छकर महादेव "	१३ सतीमाता "
५ रामसापीर "	१४ कलजुग प्रवाह "
६ कृष्णमुसार "	१५ सीतारामजी "
७ स्वमणी मंगल "	१६ राम सखमण सलोको
८ कालीनागदमण सलोको	१७ पञ्च सभा रो सलोको
९ बाप बेटी रो सलोको	१८ छोटे कव रो स्त्री रा सलोको

जोधपुर से सभी भीलमचन्द कुशसेखर ने सलोका सग्रह प्रकाशित किया है पर वह मेरे प्रबन्धन में नहीं आया है। और भी कतिपय स्वतन्त्र सलोकों का सग्रह एव वही 'शुकसावा बहार' भादि सग्रह ग्रंथों में (सत्रोंके) प्रकाशित हुए हैं।

ख्याल सज्ञक काव्य

सभी क्रियाओं का उद्देश्य किसी अभाव व आवश्यकता की पूर्ति ही होता है। कई प्रवृत्तियों पूव अभ्यास एव अनुकरण से की जाती है तो कई इच्छा की उत्कटता से अभावों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए। कुछ प्रवृत्तियाँ जीवन धारण के लिये अनिवार्य होती हैं तो कुछ जीवन को सरस बनाने के लिये स्वीकार की जाती हैं। नाटक, खेल आदि इसी दूसरी प्रकार की प्रवृत्ति में सम्मिलित हैं। मानव जीवन में कल्याण ही तो क्रीडायें ही हैं।

नाटक खेल मानव जीवन को सरस बनाने के लिये बहुत आवश्यक होने से प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान रूप से प्रिय हैं। इसलिए इसको विमुक्त लोक-कला कहा जा सकता है। जब से मानव में सुख दुःख की अनुभूति का विकास हुआ तभी से उसमें थोड़े समय के लिये भी जिनसे मनोरंजन व आनन्द की प्राप्ति हो, उनको अपनाते व प्रवृत्त होना स्वाभाविक है।

उपलब्ध भारतीय साहित्य में नाट्य कला के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से प्रकाश डालने वाले सबसे प्राचीन भारत मुनि हैं। उन्होंने नाटक की उत्पत्ति के रश्मि में अपने निम्नोक्त विचार नाट्य शास्त्र में प्रकट किये हैं —

“सुदूर प्राचीन काल में सत्य युग में सुख और पीडा जसी अनुभूतियों से लोग सवधा अपरिचित थे और इनके अभाव में आनन्द सदृश्य किसी अनुभूति की भी उन्हें कल्पना नहीं थी। फलतः उस युग में आनन्द के साधनों की भी कोई भी आवश्यकता नहीं थी। समय ने पलटा लाया। काम और लोभ के बशीभूत होकर लोग अनाचार में प्रवृत्त होने लगे। ईर्ष्या, क्रोधादि की भावना के कारण उनमें सुख और दुःख की अनुभूति होने लगी। लोगों को इस प्रकार पीडित देख कर इंद्रादि देवता ब्रह्मा के पास पहुँचे और उनसे निवेदन किया कि एक ऐसा खेल बनाइय जो भासों से देखा जा सके और कानों से सुना भी जा सके। वेदों के द्वारा किया हुआ उपदेश एक तोरूखा सा होता है, अतः वह लोगों के हृदयों में स्पर्श नहीं कर पाता। दूसरे समय की कमी के कारण गूढ़ादि उसका प्रयोग नहीं कर सकते। अतः आप सभी बलों के उपयोग में आने योग्य एक नवीन पंचम वेद की रचना

करिये। इस पर तत्त्वज्ञ ब्रह्मा ने चारों वेदों का स्मरण कर घम, भय और मोक्ष को देने-वाले इतिहास के साथ साथ उपदेश में युक्त लोगों को लोक व्यवहार का मादरी सिखाने वाले नाट्य नामक वेद की रचना की जिसमें सभी शास्त्रों का निष्कप लिया गया था और जिसमें सभी शिल्पों का प्रश्न आवश्यक था। ऋग्वेद से पाठ्य (सवाद), सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और छयववेद से रस, इस प्रकार चारों वेदों से सामग्री लेकर नाट्य वेद का निर्माण किया गया। प्रत्यक्ष ब्रह्मा से आविष्कृत होने के कारण इस कृति को षष्ठम वेद कहा गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि नाटक की उत्पत्ति जन साधारण के लिये हुई थी। नाटक का उद्देश्य बतलात हुए भी भारत ने निम्ना है कि वह सर्वोद्देश्य और लोकहित के लिए ही है। नाट्य कला एक ओर दुःखान्त यथात एव गीत के लिये विग्राम जनक एव मनोरञ्जक होती है तो दूसरी ओर लोक ज्ञान बढ़ाने भी, क्योंकि कोई भी ज्ञान, शिल्प विद्या, कला या याग ऐसा नहीं जिसका प्रयोग नाट्य अभिनय में न होता हो। नाटक के कई तत्व होते हैं।

१ सना २ गीत ३ अभिनय और ४ रस

इससे इसका क्षेत्र कितना व्यापक है हमका भरी भाति बोध हो जाता है। साहित्य, संगीत और कला इस त्रिवेणी संगम का यह अद्भुत संयोग है।

प्राचीन जनजातों में भी प्राचीन मानव सभ्यता का विकास का ऐसी ही क्या पाई जाती है। उनके अनुसार प्राचीन मानव युगलिक रूप से उत्पन्न होने से, उनकी भावनात्मकताएँ बहुत ही सीमित थीं और कृशों के द्वारा उनका पूर्ति की जाती थी। उन कृशों की सजा 'कल्पवृक्ष' पाई जाती है। शायद भी जिसमें मनोवाञ्छित प्राप्ति होती है उसकी उपमा या विशेषता कल्पवृक्ष से दी जाती है। उस समय परम्पर बलह भगदे का कोई कारण नहीं था। लोकजीवन एक बंधी साइन पर चल रहा था। समय ने पलंग खाय। कल्पवृक्षों की फलदातृ शक्ति सीखी होती धनी गई। इधर मनुष्य की दुषा प्राप्ति आवश्यकताएँ बढ़ने लगी। इसी से पारम्परिक बन्ध और भगटा की उत्पत्ति हुई। इसी सद्धानि काल में भगवान ऋषभदेव का अवतार हुआ। उन्होंने प्राचीन परंपरा में सुधार किया और सभ्यता तथा सम्यता का विकास करने के लिये पुष्यों को ७२ और स्त्रियों को ६४ कलाएँ सिखाई। अपना जपटा पुत्री ब्राह्मी को जिस वलुमात्रा की शिक्षा दी उसका नाम ब्राह्मी लिपि है और जपटा पुत्र भरत का नाट्यकला की शिक्षा दी जिससे भरत नाटक

प्रसिद्ध हुआ। 'वसुदेव हिंदी' नामक पाचवीं शताब्दी के प्रचीन कथा ग्रन्थ में इसका उल्लेख पाया जाता है।

सगीत और नाटक मानव को ही नहीं परंतु पशु जगत को भी प्रभावित करते हैं। देवों का जहां बहान मिलता है वहां तो मानो उनका अधिकार समग्र नाटक क्षेत्र देखने में ही स्पष्ट होता है ऐसा बहान पाया जाता है। वे नाटक बड़े दिव्य होते हैं और दीर्घकाल तक चलते रहते हैं। भगवान महावीर के समय उनके एक भक्त देव सूर्याभ ने ग्रामलक्ष्मी नगरी में भगवान महावीर के पाम धारक वसीस प्रवार के नाटक खेले थे। जिनका बहुत ही सुंदर बहान रायपसेखीय नामक उपाय सूत्र में सौभाग्य से सुरक्षित रह गया है। अभी तक ऐसा विशद नाट्य बहान दूसरे ग्रंथों में नहीं पाया जाता। इसलिये यहा उसका सारभाग लिया जा रहा है।

"सूर्याभदेव ने भगवान महावीर को बदना नयस्वार करके बिलती की कि भगवन् ! आपतो सबज्ञ हैं। भूत, भविष्य और वनधान के भावों, घटनाओं और मेरी दिव्य देव छुति ऋद्धि सिद्धि सब को जानते हैं पर गीतमादि भयण निर्घणों को मैं ३२ प्रकार की नाट्यकला दिखाकर अपनी शक्ति प्रदर्शित करने की इच्छा रखता हूँ। महावीर मौन रहे। तब सूर्याभदेव दो तीन धार अपने वाक्यों को दुहरा कर, तीन प्रदक्षिणा देकर नाटक की तैयारी करने लगा। उसने उत्तर, पूर्व और ईशान कोण में जाकर शीघ्र तमुद्रघात द्वारा एक लडा डड निकाल कर सारी सामग्री सजित की। नाटक के लिये एक गोमाकार स्थान को सज्जित किया, उसके बीच में नाटकशाला खड़ी की। सिंहासन, छत्र आदि सभी वस्तुओं को यथा स्थान सज्जित किया। फिर महावीर को प्रणाम करके स्वयं उनके सामने सिंहासन पर बैठ गया। अपने दाहिने हाथ को प्रसारित कर उसमें से समान रूप लावण्य वाले वस्त्राभूषणों से सुशोभित १०८ देव कुमारों को प्रकट किया और बायें हाथ से इसी प्रकार १०८ देव कुमारियों को। फिर ४६ प्रकार के १०८-१०८ वाद्य यंत्र और चलने ही उनके बजाने वालों को प्रकट किया। तदनंतर दशकुमार और देव कुमारियों को उसने आज्ञा दी कि महावीर एवं गीतमादि सभी निर्घणों को प्रणाम कर ३२ प्रकार के नाटकों का प्रदर्शन करो। तब वे सूर्याभ के आदेशानुसार एक पक्ष में सटे होकर भगवान की वंदना करने साथ यत्र वजाने लगे और नृत्य करने लगे। उन्होंने मद और मधुर स्वर से सगीत प्रारम्भ करके नाट्यशाला को गुंजारित कर दिया और फिर श्रीवध, नदावर्त, वर्यमान, भद्रासन, वसुध, भस्त्र और दपण आदि नृत्यों का प्रदर्शन किया।

इसी प्रकार प्राय ३० नाट्यकलाओं का प्रदर्शन करने के बाद ३२ वें प्रदर्शन में भगवान महावीर के पूर्ण भव से प्रारम्भ कर निर्वाण तक अभिनय कर दिखाया ।

इस प्रसंग में रामपसेणी सूत्र में जिन नाट्यों का बखान है वे बड़े अद्भुत हैं । उनमें से कुछ का बखान तो भरत नाट्य शास्त्र में आता है पर कई नृत्यों की परम्परा भरत नाट्य के निर्माण तक सुप्त हो गई भाषूम होती है । अन्त में चार प्रकार के वाद्य तत्, वितत्, धननक्कर और छुपिर एष चार प्रकार के समीत उत्सृष्ट, पाद्वृद्ध, मद् और रोचित और चार प्रकार के नृत्य, भक्ति, रिचित, भारभट और भ्रूलो और चार प्रकार के अभिनय दार्शनिक, प्रात्यतिक, सामाय, नोपनीपातनिक और लोच मध्यावसायनिक का प्रदर्शन किया ।

प्रश्नी तक कोई भी इतना प्राचीन नाट्य तो उपलब्ध नहीं हुआ इसलिए जन साधारण के प्राचीन नाटकों का पूर्ण रूप कहा जा ? स्पष्ट नहीं बताया जा सकता । विक्रम सप्त के प्रारम्भ में लगभग से सस्कृत के नाटकों की उपलब्धि होने लगती है । इन नाटकों में स्त्रियों के कपोपकपन प्राकृत भाषा में दिये हैं, इससे जन साधारण के निकटवर्ती रहने का प्रयत्न परिलक्षित होता है । मध्यकाल में सस्कृत नाटक तो रचे जाते ही रहे हैं, पर साधारण जनता के लिए लोक भाषा में रास, चर्चरी, फागु आदि काव्य रचे जाने लगे थे, जो गेय के साथ अभिनेय भी थे । किसी मागलिक प्रसंग, उत्सव, गुरुओं के आगमन, मन्दिरों की प्रतिष्ठादि प्रसंग में जनता इन्हें खूब रस से गाती थी और शब्दों के खेल और लालियों के साथ नृत्य किया जाता था । उस समय के रचे गये ग्रंथों में इनका स्पष्ट उल्लेख है । बागूमट्ट और हमचन्द्रसूरि ने रासक का लक्षण बतलाते हुए उसे उपरूपक बतलाया है — 'दोम्बिका भाण— अस्थान—बाणिका—प्रेरण—विगक—रामा—श्रीड—हल्लीसक—श्रीगदित रासक—गोष्ठी प्रभृतीनि गेयानि ।' इसकी वृत्ति में लिखा है कि "पदाप्यभिनेय स्वभाषानि शम्बिकादीनि गेयानि रूपकाणि चिरतनैस्वतानि ।"

रासक का लक्षण — "अनेक नतकी योग्य चित्र ताल सयान्वितम् ।

आद्यतु-चण्डि युगसाहायक मसुणोद्धतम् ॥

अर्थात् जिसमें नतकियें अनेक हों, अनेक प्रकार के ताल और लय हों, परन्तु जिसमें ६४ तक युगल हो ऐसा कोमल और उद्धत गेय 'रासक' है ।

१२वीं से १३वीं शताब्दी के रास, चर्चरी, फागु सज्ञक काव्यों में उनसे छेले जाने का उल्लेख मिलता है । स० १३२७ के अन्त में लिखा है कि—

“बदसद सद्दह भमणसघ सावय गुणवता ।
 ओमद उच्छावु जिणह भुवणि मनि हरव धरता ।
 तीछे तात्तारस पड्ड वहु भाट पड ता ।
 अनद लकुटारस जोईई लेसा नाचता ॥४८॥
 सधिह सरीखा त्तिणगार सवि लेवड तेयडा ।
 नाघह धामीय रपरै लड भावइ रुडा ।
 सुसत्तित वारिण मधुरि सादि जिण गुण गायता ।
 तास मानु छरयोत्त मेनु वारिच्च वाचता ॥४९॥

मर्पति जनमदिरो के उत्सव प्रसंग से व्यावक व्याविका रूप क साथ एकचित होते और तालिया के साथ एक डांडियों के खेल के साथ रास खेल जाते ।

इसमें स्त्रिया भी भाग लेती थीं और रात्रि को भी ये बहुत देर तक खेले जाते थे । अत इस काम को सुविहित मानान्नुपायो मुनियों ने उचित नहीं समझा । विशेषत करतर गच्छ के आवाधों ने इसका तो निषेध किया । स ० १९२७ में रचित सम्प्रकृतन माई चौपाई में भी इसका सूचन मिलता है ।

“तात्तारागु रयाण नहु देह सज्जारागु मूलह वारेइ ।” मर्पति तालियों के साथ रास का खेलना रास को न किया जाये और डांडिया लकड़ियों के रास को तो मूलत बजिन किया जाता है ।

फागु का य वसंत ऋतु में विशेषत फाल्गुन या चत्र में खेले जाने हैं । स्थूल मद्र फागु में इसका स्पष्ट उल्लेख है —

‘खेला नाघह चत्रमासि रगिहि भावेवड व्हू ।’

‘विवाहले’ काव्यों में भी उनके रमे जाने व खेले जाने का उल्लेख मिलता है । जिनेश्वर मूरि विवाहले में लिखा है— एह विवाहलज्जे जे पड्ड, जे दिया हि खेला खेसहि रप भरे’ और रास सप्तक काव्यों में तो उनके रमने और खेले जाने का उल्लेख अनेक स्थानों में है ।

वेवड रास में — “रास रमेवड जिण भुवणि तास भेल ठवि पाउ,”

अभय तिलक रचित महावीर रास में —

‘पमणिसु धोरह रामुसउ, खेसहि भिसव करारिउ

जिनोरममूरि पट्टामियेव रास में — “रमउ रामु इहु रगि ।”

रास रमे जाने का अन्तिम उल्लेख म० १८८६ में रचित उपाध्याय जयसागर के वरर स्वामी रास में मिलता है "उज्ज्वल भगस रास रमिजै ।"

जैनाचार्यों के नगर प्रवेशोत्सव के समय रास एव चर्चरी के दिये जान धीर धवल भगवत गीतों के गाय जाने का उत्तम युग प्रधानाचार्य गुर्वाचरी में अनेकों द्वार किया गया है । सम्राट पृथ्वीराज की सभा शास्त्राप में विजय प्राप्त कर जिनपति सूदि पोषधाला में पधारते हैं तब रास्ते में चर्चरी दिये जाने धीर धवलों के गाये जाने का उल्लेख किया है —

‘पुर मध्ये स्थाने स्थाने रतमरैण प्रेसणीयके निष्पद्यमाने,

दाने च ध्याप्रियमाणे, चर्चर्या दीयमानायां, धवलेषु गीयमानेषु,

स० ११३७ बीजापुर में वासुपूज्य जिनालय क महोत्सव अलग पर लिखा

गया है —

स्थाने स्थाने प्रसुवितजनेन दीयमानेषु प्रधानरासकेषु

नानाधिरणि भागेषु गीयमानेषु विषय प्रवर चर्चरी धेरिण गतेषु,

उपयुक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि अन साधारण में जो मध्यकाल में रास, चर्चरि, पागु आदि रमे व खेले जाते थे वही पीछे से रमत, रामत, खेम, स्यात के रूप में प्रगटित हुए ।

श्री उदयशरर गान्धी ने देशबन्धु वष २ अंक ७ प्रकाशित अपने लेख में लिखा है कि— ऐसा कहा जाता है कि १८वीं शती के प्रारम्भ के आसपास ही आगरे के ईद गिद एक नई कविता शली प्रचलित हो चली थी, आगे चलकर जिसका नाम स्याल पडा । स्याल निश्चित ही उर्दू और फारसी क मसाले से तयार चीज थी । उसको नये नये कथानकों में बाधना सबका काम नहीं होता था । आगरे में इन स्यालियों के कई दल, जिनमें सभी प्रकार क लोग थे और सभी प्रकार की बरिसें बाधन चामों के गोल कभी कभी होव भी लगाने लगते थे ।

१५वीं शताब्दी तक क रास साहित्य की देखने पर अधिकांश राम छोटे छोटे ही मिलते हैं उनका उद्देश्य खेले जाने में सुविधा रहे, यही प्रतीत होता है । अधिक लवे रास एक दिन में व एक खेल म समाप्त नहीं किये जा सकते हैं और खेल देखने वाले प्रायः यही चाहते हैं कि एक दिन में ही वह समाप्त हा जाय । १५वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से बढे रास रच जाने लग तब से वे धरित काव्य के रूप में परिणित हो गये । इस समय

“बदसद सहृद भ्रमणसथ सावय गुणवता ।
 जोयद उच्छ्रायु जिल्लह भुवलि मनि हरय धरता ।
 तीछे तालारस पड्ड वहु भाट पड ता ।
 झनद सकुटारस जोईई खेला नावता ॥४८॥
 सविहू सरोखा तिरुगार सवि सेवड सेवडा ।
 नाचड धामोय रभरे तड भावड कडा ।
 सुसलित बारि मधुरि सादि जिल्ल गुण पायता ।
 ताल मानु छरधीत मेनु वाञ्छिन्न बाजता ॥४९॥

अर्थात् जनमदिरो के उत्सव प्रसंग से धावक धाविका रूप के साथ एवमित होते घोर तालियों व साथ एक डांडियों के खेल के साथ रास खेले जाते ।

इसमें स्त्रिया भी भाग लेती थीं और रात्रि को भी ये बहुत देर तक खेले जाते थे । अत इस काय को सुविहित मार्गानुयायी मुनियों न उचित नहीं समझा । विनोयत शरतर गच्छ के आचार्यों ने इसका तो निषेध किया । स० १३२७ में रचित सम्बन्ध भाई चौपाई में भी इसका सूचन मिलता है ।

“तालापामु रयाण नहु देह सडडारामु मूनह वारेइ ।” अर्थात् तालियों के साथ रास का खेलना रात को न किया जाये और डांडिया लकड़ियों के रास को तो मूलत वर्जित किया जाता है ।

पाणु काव्य वसन्त ऋतु में विशेषत फाल्गुन या चत्र में खेले जाते हैं । स्थूल भद्र फाणु में इसका स्पष्ट उल्लेख है —

‘खेला भावड चत्रमासि रनिहि गावेवड बहू ।’

‘विवाहले’ काव्यों में भी उनके रमे जाने व खेले जाने का उल्लेख मिलता है । जिनेश्वर सूरि विवाहले में लिखा है— एह विवाहलड जे पड्ड, जे दिया हि खेला खेलहि रग भरे” और रास सगक काव्यों में तो उनके रमने और खेले जाने का उल्लेख अनेक स्थानों में है ।

वेपड रास में — “राम रमेवड जिन भुवलि ताल मेत ठवि पाड,”

अभय तिलक रचित महावीर रास में —

“पमलिसु वीरह रामुसड, खेलाहि मिसव कराविड

जिनोवमसूरि वट्टामियेक रास में — “रमड रामु इहु रमि ।”

रास रमे जाने का अन्तिम उल्लेख नं० १४८६ में रचित उपाध्याय जयसागर के घर स्वामी रास भ मितता है "उल्लेख भगन रास रमिर्ज !"

जनाचार्यों व नगर प्रवेगोत्मव के समय रास एव चचरी के दिय जाने और धवल भगव गीर्णों के गाये जाने का उल्लेख युग प्रधानाचार्य मुर्वावली में घनेवों वार किया गया है । सम्राट पृथ्वीराज की समा शास्त्राय मे विजय प्राप्त कर जिनपरि सूरि पीपघद्याला म पधारत है वव रास भ चचरी दिये जान और धवलों के गाय जाने का उल्लेख किया है —

“पुर मध्य स्थाने स्थान रगभरेण प्रेक्षणीयं निष्पद्यमान,

दाने च ध्याप्रियमास्तु, चक्षुर्धर्मा होयमानायां, धवलेषु गीयमानेषु,

स० १३३७ बीजापुर में वामुपूज्य त्रिनालय व महोत्सव प्रसंग पर लिखा

गया है —

स्थाने स्थान प्रमुञ्जितनेन होयमानेषु प्रधानरासरेषु,

नानाविधेषु मार्गेषु गीयमानेषु विषय प्रवर चचरी खंलि गतेषु,

उपयुक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि जन साधारण में जो मध्यकाल में रास, चर्चवि, फागु भादि रमे व सेले जात थे वही पीछे स रमत, रामत, सेव, ब्यात के रूप में प्रगटित हुए ।

श्री उदयानकर धाम्नी न देगवयु वर्ष २ अंक ७ प्रकाशित धपन लेख में लिखा है कि— एसा कहा जाता है कि १८वीं शती के प्रारम्भ के आसपास ही आगर व इद गिर एक नई कविता शमी प्रचलित हो गयी थी, धाने बनकर त्रिपटा नाम स्थान पड़ा । स्थान निश्चित ही उर्दू और फारसी व यज्ञान से तैयार थी । उषको नय नये कपानको म बाधना सबका काम नहीं होता था । आगर में इन कथानियों के कई दल, जिनमें सभी प्रकार के लोग थे और सभी प्रकार की वर्णों वर्णन वामों के गाय कभी कभी होठ भी लगाने लगते थे ।

१५वीं शताब्दी तक के रास साहित्य को स्थान पर अधिकांश रास छोट छोटे ही मिलते हैं उनका उद्देश्य सेले जान में सुविधा रहे, यहा प्रमाण नाना ५ । अधिक नवि रास एक दिन में व एक खेल में समाप्त नहीं किये जा सकते हैं और जन स्थान जान प्राप्त यही चाहते हैं कि एक दिन में ही वह समाप्त हो जाय । १४वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के बड़े बड़े रास रचे जाने लग तब से व अरिठ काव्य के रूप में प्रगटित हो दन । इन समय

से १८वीं शताब्दी तक जन साधारण के धन तमास के रूप में किन्हीं काव्यों का प्रचार रहा एवं धेन किस प्रकार से खेल जाते थे ? इसका कोई ठीक ठिकाना नहीं है। रासकों की परम्परा रासलीला एवं गर्बा इत्यादि के रूप में आज भी चल रही है। लोच भाषा में रचित प्राचीन नाटक तो बहुत ही कम मिलते हैं।

श्री उदयशंकर गार्गी ने क्यालों का प्रारम्भ १८वीं शताब्दी व से प्रायः के भासपास के प्रदेश से होना माना है पर १८वीं शताब्दी के रचित क्याल संज्ञक काव्य कोई भी उपलब्ध नहीं है। संभव है वे छोटे रूप में हों और मौखिक प्रचलित रहे हों।

जहाँ तक राजस्थान में लिखित क्यालों के प्रचार का प्रश्न है मेरे क्याल से १९वीं शताब्दी के से ही इनका प्रचार हुआ होगा। अनूप सस्कृत साहसरी, बीकानेर की एक हस्तलिखित प्रति में भारवाडी में क्याल लिखा मिलता है पर वह थोड़े से पद्यों का ही है। संभवतः यह प्रति १९वीं के उत्तरार्ध या २०वीं के प्रारम्भ की होगी। श्री मोतीचन्द जी लजांची के सग्रह में हीर रजा के तमासे की एक छोटी प्रति देखने की मिली है जो १९वीं के उत्तरार्ध की है।

प्रकाशित भारवाडी क्यालों में जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ है, Scotch Presbyterian Mission व्यावर की प्रकाशित एवं पादरी रोसन के सम्पादित 'भारवाडी क्यालाज' पुस्तक ही सद्यःप्रयत्न है। यह पुस्तक प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकी। पर इनमें प्रकाशित 'डू गरी जवारजी' के क्याल के कई उद्धरण 'S H Kellogg के "A Grammar of the Hindi language" पुस्तक में देखने की मिलते हैं।

साज बला के गताक में श्री मनीहर शर्मा का 'राजस्थान के लोच नाटक क्याल' नामक एक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उनके देखने में प्राप्त हुए प्रकाशित ६६ क्यालों की नामावलि भी दी गई है। पर क्याल तो सबको की सख्या में हैं। राजस्थान के जोधपुर, भरतपुर, जयपुर, निशानगढ़, कुचामन, जसलमेर के प्रतिरिक्त व्यावर, मथुरा से ही नहीं पर मुद्गर कलकत्ता बम्बई व मध्यभारत से भी राजस्थानी जनता में विक्रय के लिये बहु सख्या क्याल प्रकाशित हुए हैं। इनमें से कल्पों में उनके रचयिता का निर्देश नहीं है पर रचयिता के निर्देश वाले क्यालों से उनके रचयिता बहुत प्रचुर सख्या में हैं और विभिन्न जाति वाले हैं सिद्ध होता है।

क्याल राजस्थानी लोक-साहित्य का एक अविभाज्य अंग है। इसमें वास्तविक

रूप में संगीत है। वाद्य, नृत्य, एक गीत की त्रिवेणी में स्नान करने जनमाधारण की प्रारम्भ बही ही प्रसन्न होती है। क्यालों में ये तीनों ही अपनी विशेषता के साथ प्रयुक्त होने हैं। ये गीत नाटक राजस्थान की महाप्राणता के अनुरूप भी है। साधारण आदमी के लिये इनका अभिनय बड़ा कठिन है। इनके लिये गायक के गले में शक्ति होना जरूरी है। इसी जोर के लिये प्रत्येक गायक मंच पर आते ही सबप्रपंच धारणा को बदना करते हैं। क्याल के गायकों में गुह के प्रति भी अपार श्रद्धा मिलेगी। वे गुह का नाम लेकर ही प्रस्ताव में नाच प्रारम्भ करते हैं। यह मंगल प्रेरणा भी क्यालों की एक विशेषता है। फिर भी धेनू है कि लोक-साहित्य के मय अंगों की तरह क्यालों के प्रति भी लोगों का ध्यान कम होता जा रहा है। साहित्य छोषकों का कनम्य है कि हम रस धारा को सूखने न दें। अब क्यालों को नया जीवन मिलना चाहिये। उनके नये नये प्रसंगों का प्रयोग होना चाहिए। राजस्थान के लोगों के पास महापुरुषों का सदेव पहुँचाने में ये क्याल बड़े ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वास्तव में इसी भावना का ये क्याल निमाए भी बने जा रहे हैं। प्रत्येक युग के विशिष्ट पुरुषों के जीवन एव क्याल बने हैं और उनके अभिनय हुआ है। पुस्तकों बदलती रही है, परन्तु अभिनय का रूप वही प्राचीन जला भा रहा है। लोक जीवन को ऊँचा उठाने का यह एक काम साधन है। किसी देश की वास्तविक चन्नति उसके लोक जीवन का उत्थान ही है।

प्रकाशित क्यालों की अकारादि क्रम से सूची

- | | |
|-----------------------------|--|
| १ अमरसिंह — मोतीमाल | १२ काकी जेहूता |
| २ अमरसिंह हाडी रानी — उबीरा | १३ निसरीसिंह का क्याल — फूलादक कसरी सिंह |
| ३ अमरकाल भसुंहरि की | |
| ४ अमलदार | १४ असर गुलाब का क्याल |
| ५ अष्टपदी | १५ असरीसिंह — अशोधर गर्मा |
| ६ आनंदी गणपति — पुनमचंद | १६ कुंवनमल |
| ७ इन्द्रसभा — नानू | १७ अष्टपटिया का — पुनमचंद |
| ८ इन्द्र कुंवर — नानू | १८ लीवित्री आभल दे — नानूमाल |
| ९ उठव गोपिका — पुनमचंद | १९ क्याल दोहा पाली सपह |
| १० अमलुग | २० क्याल दसमासिया |
| ११ बरये धुने का — गलेंग वल | २१ क्याल भारवाड़ी गीत |

- २२ ख्याल सुन्दर नगोना
- २३ ख्याल निहालदे का बडा निमल
- २४ ख्याल नागदे
- २५ ख्याल गोपीचन्द भरघरो
- २६ ख्याल सालगा सदाबुझ
- २७ ख्याल मलियार
- २८ ख्याल रिताल बेला दे
- २९ ख्याल रिताल कामदे
- ३० ख्याल काकी जेठूते का
- ३१ ख्याल शनिश्चर का
- ३२ गोपी चन्द — मोतीलाल
- ३३ गोपा चौहान
- ३४ गोपीचन्द — मोतीलाल
- ३५ गांधी इतरफरोस — मामू
- ३६ गुल जरीमा — छकबर
- ३७ गेंदपाल गजारादे
- ३८ चकव घैण — नानुलाल
- ३९ चन्द्र भलयागिरी — लच्छीराम
- ४० चितारा चितरणी
- ४१ चन्द्र प्रताप भानजी
- ४२ चन्द्र कुंवर कून कुंवर
- ४३ चन्द्र मुकुट
- ४४ चतुर छैला — ब्रजलाल
- ४५ छैला पनिहारी
- ४६ छोटा कप को
- ४७ छला दिलजान को
- ४८ छोटा बालम — पूनमचन्द
- ४९ जगदेव ककाली — नानु
- ५० झोहरी का ख्याल — भासीराम
- ५१ जुटी खतराखी
- ५२ ज्यानात्म ब्रजुनारा — गगावत
- ५३ छाट को ख्याल — गोविंदराम
- ५४ जैमल
- ५५ झुगरसिंह का ख्याल
- ५६ झुगरजी भुवारजी को
- ५७ डोला मखण — नानु
- ५८ डोला मुलतान निहालदे कोख्याल
- ५९ तेजाजी को ख्याल
- ६० तेजाजी जाट को — पूनमचन्द सुलवास
- ६१ तारासिंह खासापरी — पूनमचन्द
- ६२ शो गोरी का बालमा
- ६३ देवर भीमार्ई
- ६४ बयाराम पाखवी — प्रह्लादीराम
- ६५ देव नारायण चरित्र
- ६६ देवर भाभी का
- ६७ देवराजी जिठानी का
- ६८ कुल्लो पाडी
- ६९ ध्रुव जी का ख्याल — बालुराम
- ७० नल दमघती
- ७१ नखद भीमार्ई—मामू
- ७२ नलराजा—मामू
- ७३ नागजी मारवा १ ख्याल
- ७४ नेनें खतम को ख्याल—तेज
- ७५ नरसी मेहुता

- ७६ नागजी नागवती को
 ७७ निहालदे सुततान को
 ७८ निहालदे भारवाडी को
 ७९ मोटकी भारवाडी को
 ८० नागोरी छला
 ८१ नद्याबाज का—पुनमचन्द
 ८२ पठार सहजादी—नानू
 ८३ पक्कूसारानी या क्याल
 भासाडाडी को—मगवानदास
 ८४ पलाबीरमदे—बजीरा
 ८५ पजाबी हकीम—पुनमचन्द
 ८६ पूरण भगत—नानू
 ८७ पूरणभगत का भारवाडी क्याल
 —बजीपर

- ८८ पावुजी राठीड—बतीधर
 ८९ पणियारी लोरे के क्याल
 ९० पारत पीताम्बर
 ९१ पृथ्वीराज
 ९२ प्रह्लाद धरित
 ९३ बुका बालम का क्याल
 ९४ बनलीला
 ९५ धगडावत भारत का
 ९६ बुटा बनडा का क्याल—
 बगनाथ उपाध्याय
 ९७ बिक्रम सति कला
 ९८ बनजारा
 ९९ बंटा भावस्याह सहजाबी—नानू
 १०० बुकापे के क्याह का क्याल

- १०१ बज्जमुकुट पदमभावती—बजीरा
 १०२ बलजी भूरजी—बज्जु
 १०३ बूढो घाँव—गजानन्द
 १०४ भतु हरि—तेजकवि
 १०५ भूतिया अटियारिन
 १०६ भवर घमेली—पुनमचन्द
 १०७ भोज भानमती
 १०८ भरधरी विंगला सतवती—पुनमचन्द
 १०९ भक्त मुदामा—पुनमचन्द
 ११० भालदे हाडीरानी—बजीरा
 १११ भूमल महेंदरे का—तेजकवि
 ११२ भोरध्वज को क्याल
 ११३ बीरा भगत—लच्छीराम
 ११४ भवनसेन चन्द्रकिरन
 ११५ माधवानल काम कवला—बजीरा
 ११६ मुकलावा बहार
 ११७ भवनपालजी चन्द्रपरी—पुनमचन्द
 ११८ मजकुवर—पुनमचन्द
 ११९ कपरतन रसकुला—पुनमचन्द
 १२० रामदेवजी का क्यावला—पुनमच
 १२१ राजा लक्षपत—बकसीराम
 १२२ राजा भोज—बकसीराम
 १२३ रोहतकुवर को क्याल
 १२४ रामलीला को क्याल
 १२५ रानी निहालदे धीरकुवर सुततान
 —प० किशनदास
 १२६ राजा रिसामु—भातीराम
 १२७ राजारिसामु नोपदे—भातीराम

१२८ राय रिद्धमल

१२९ रितालु बालक दे

१३० रामदेवजी का क्याल

१३१ चकमणी मंगल का खेल

१३२ चकमणी स्वयंवर का खेल

१३३ चकमणी हरण का खेल

१३४ राजा भोज भानमती

१३५ रितालु बेलादे

१३६ राजा करण—प्रेमसुख भोजक

१३७ राणा रत्नसिंह—चुनोलाल

१३८ रतन कुंवर चन्द्रावल

१३९ रितालु रसवती—पूनमचन्द्र

१४० रितालु बेलादे—पूनमचन्द्र

१४१ लला मजनु पाक मोहब्यत—नानू

१४२ लजाबहन सीताहरण

१४३ विराट पथ भाग बहला—नानू

१४४ विराट पथ भाग दूसरा—नानू

१४५ विराट पथ भाग तीसरा—नानू

१४६ विराट पथ भाग चौथा—नानू

१४७ विक्रमादित्य की क्याल

१४८ विजयावहू की क्याल

१४९ बीरमदे सोनगरी

१५० विक्रम सत्सुकता—सातचन्द्र

१५१ विक्रमादित्य चन्द्रकला—पूनमचन्द्र

१५२ सोनो सतवती

१५३ धयलकुमार

१५४ छाहजदे का—भाबरमल

१५५ गंकर कंताती

१५६ क्याम कतिजा इनु की

१५७ सत्यनारायण व्रत कथा—धनीपर

१५८ सभापथ मयवा घोर हरण—नानू

१५९ सीतकरण सुदबुद सातग्या

१६० सुततान मरवण भात का—ना

१६१ सूरज कुंवर—फतहचन्द्र

१६२ सेठ सेठानी

१६३ सोलह धनजारे का

१६४ सोरठ बीन्हा की क्याल

१६५ सती हेमकुमार

१६६ सुतोपना

१६७ सोने लोहे के भगडे की क्याल

१६८ सोबागर बजीरजाबी—नानू

१६९ सासू बहू का क्याल

१७० साहिब नू सचबा

१७१ सुसनान निहालो—बजीरा

१७२ सीतो सतवती—गंगावसत

१७३ सेंवरामाजलदे—पूनमचन्द्र

१७४ सुधबुध सवलगरा

१७५ सोरठ बीन्हा

१७६ सेठ मुनीम—नानू

१७७ सहजादे का खेल

१७८ सुततान बादस्याह—नानू

१७९ सहजावा मठियारी—धजी

१८० सयदला ऊदयाल—धौकला

१८१ स्वामी चेला—मोविबराम

१८२ सहजादी

१८३ हरिणचन्द्र का घडा क्याल—ध

१८४ हार रंभों—नानू

१८५ हेम कुंवर चरित

१८६ हरिचन्द्र तारामती

१८७ हकीम गरमो बाला

१८८ हनोरहठ

१८९ हरिचन्द्र तारादे

हियाली संज्ञक रचनाएं

जीव जगत् के लिये बौद्धिक शक्ति प्रकृति की एक अनुपम देन है, जीवन में पग पग पर बौद्धिक विकास की आवश्यकता का अनुभव होता है। बुद्धि के बिना शारीरिक बल भी विशेष कामयाब नहीं होता व बहुत सी बातें तो बुद्धि के द्वारा ही ठीक से सम्पन्न हो सकती हैं वहां शारीरिक बल कोई काम नहीं देना। जीवन में अनेक बार हम ऐसी अवसरों में फंसे जाते हैं कि हमें क्या करना चाहिए? इसका कोई भाग नहीं सूझता। बुद्धि उग समय हमें भाग प्रदान कर अवसरों को सुनभानने में सहायता करती है। नित्य नये आविष्कार एवं ज्ञान विज्ञान को खोज बुद्धि के द्वारा ही सम्भव है। धर्म प्राणियों की अपेक्षा मानव में बुद्धि विशेष रूप से विकसित पाई जाती है। छोटे से लेकर बड़े किसी भी काम में बुद्धिहीन एक बुद्धिहीन के समान रूप से करने पर भी उसकी प्रणाली की सुन्दरता व सीधता से सुभावता एवं अनुपम सफलता एवं विफलता का जो अंतर नजर आता है वह बौद्धिक विकास की आवश्यकता के कारण ही।

भारत में बौद्धिक विकास, उसकी शक्ति व शक्ति का विकास एवं सुशासनबुद्धि के कारण ही है। जन साहित्य में महात्मा का अर्थ ही उनके पुत्र भगवन्कृष्ण के बौद्धिक समसंगों के उदाहरण मिलते हैं। जन समाज के व्यापारी पग अपने नये सारों में भगवन्कृष्ण के समान बुद्धि होने की कामना प्रकट करते हैं। मदीयुग में बार प्रचार की बुद्धियों का विवरण मिलता है जिनके दृष्टान्त में, रोहन आदि के कई बुद्धिबद्ध दृष्टान्त टीकाकारों ने दिये हैं। 'भार प्रत्येक बुद्धि चरित्र' में एक बितरे की लड़की ने जिस प्रकार नित्य नई समसामूलक कहानियाँ कहकर अपने पति (राजा) को ख महीने तक नित्य उन कहानियों एवं उनके भाई हुई समस्याओं के परिणाम को सुनने के लिये धान को बाध्य किया, इसकी रोचक कथा पाई जाती है। 'जनसंघन सूत्र वृत्ति' में उसकी कही हुई बौद्धिक समसंगार सूचक कई कहानियों का संपूर्ण किया गया है, हमारे उम प्राचीन बुद्धिबद्ध साहित्य को सर्वाधिक प्रकाश में लाना अत्यन्त आवश्यक है।

विज्ञान का वास्तविक उद्देश्य भी बौद्धिक विकास ही होता है। समुचित बौद्धिक विकास होने पर वह व्यक्ति जिस किसी क्षेत्र में काम करेगा, उसे अत्यन्त रूप से

संपन्न करके सफलता प्राप्त कर सकेगा। गणित-शास्त्र भी हमारी बुद्धि को तेज करने के लिये अच्छा साधन है, उसमें अनेक ऐसे सवाल आते हैं जो साधे तौर पर हल करने में बड़े कठिन मालूम होते हैं, पर बुद्धि और गुरु के द्वारा सहज ही हल किये जा सकते हैं। राजस्थान में जो गणित शिक्षा की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही है वह बच्चों की बहुत धीम्रता से लेखे और हिसाब में दक्ष बना देती है। उनकी ऊपर वाडियों इतनी सफल है कि जिम हिसाब को अंग्रेजों पढा लिखा मथमेटिक के अनुसार घंटों में हल नहीं कर सकता और उसे अनेक कागज वाले करने पड़ते हैं, वह मारवाड़ी 'मारवाड़ी' द्वारा शिक्षित छोटे छोटे बच्चे बच मिट्टी म द मौलिक रूप से ही हल करके बता देते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उन सरल परिपाटियों की पूछ नहीं होने से हमारी वह विद्या दिनो दिन कमजोर हो रही है। इनका भी हमें प्रचार उद्धार व विकास ठीक से करना होगा।

राजस्थान में विवाह आदि के समय जामाता को सालियां ससुराल में रात्रि के समय उसकी बौद्धिक परीक्षा के लिये अनेक प्रकार की आडियों पहेलियों-पूछती हैं, यदि जामाता उनका ठीक से उत्तर नहीं दे पाता तो उसे नीचा देखना पड़ता है और सालियों आदि उसे मोंदू समझ लेती हैं। इस समय गीत गाने वाली स्त्रिया भी एक ऐसा गीत गाया करती हैं जिसमें घटपटी बातें (हियालियां) कही जाती हैं, उन समस्याओं का उत्तर जवाब से पूछा जाता है। आज कल तो हमारी क-याओ म शिक्षा की कमी होने से उन आडियों की जानकारी बहुत सीमित ही होती है पर य जन ज्ञान भंडारों में लिखित रूप में सबको की प्रक्या में पाई जाती हैं। ऐसी ४०४ आडियों का एक संग्रह २७ वष पूष बीकानेर से अयोध्याप्रसाद शर्मा ने 'आडी संग्रह' के नाम से प्रकाशित किया था। खोज करने पर और भी अनेक आडियां मिलेगी जिनके संग्रह के द्वारा हमारे बौद्धिक विकास में बड़ी सहायता मिल सकती है। ये पहेलिया विविध प्रकार की होती हैं कुछ की सजा गूढ़ है जिसमें भाव गूढ़ (गुप्त) रहता है, कुछ गुरु चेलों के दोहों के रूप में प्रसिद्ध हैं जिनमें तीन तीन बातों का उत्तर एक शब्द द्वारा दे लिया गया है। ऐमे दोहों का कुछ संग्रह मैंने 'राजस्थान भारती (भाग २ अंक १) में प्रकाशित किया था। कई लक्षियों से प्रश्न के रूप में भी ऐसे प्रश्न 'सउत्तरा' के नाम में पाये जाते हैं। श्रीगुरु मनोहर शर्मा के राजस्थान की पहेलियों के संबंध में कई लेख राजस्थान भारती, वर्ना धानि में प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें लोक प्रचलित पहेलियों के विविध उदाहरण संग्रहित हैं। अतर्लापिका, बहिलापिका, समस्यापूर्ति

भादि रचनाएँ भी बुद्धिवर्द्धक होती हैं।

राजस्थानी लोकवार्ताओं में भी कई वार्ताएँ बड़ी बुद्धिवर्द्धक होती हैं जिनमें किसी समस्या का हल बड़े विचित्र बुद्धि-कीर्तल से कराया जाता है। मैंने ऐसी कई लोकवार्ताएँ प्रकाशित की हैं। जिनमें से एक का चीपक डे 'बाप से वेदा सवाया'। ऐसी और भी कई लोकवार्ताएँ मिलती हैं जिनका भी संग्रह प्रकाशित होना चाहिए।

जब कवियों के रास आदि ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में नवदम्पति एक दूसरे की बुद्धि परीक्षा और मनोरञ्जन इन्हीं गूढा, छन्द हियाली और चौदेवी आदि की वार्ताएँ कह कर किया करते थे। कवि समयसुन्दर ने 'नल दमयन्ती' चौपाई में नव-दम्पति के रास के समय विनोदवार्ता करने के प्रश्न में कहा है —

कब ही खोबोली बहे कूहा गूढा छन्द

हियाली रूते कहे, महनिजि करे मानव ॥

'भायबनल काम कदला' प्रबन्ध आदि में भी दम्पति के इन्हीं वार्ताओं द्वारा मनोरञ्जन एवं समयनिगमन का उल्लेख मिलता है। कवि गणपति के भायबानल प्रबन्ध में बहुत सी पहलियाँ प्रकाशित हैं।

जब कवियों ने हियाली सगक ऐसी बहुत सी रचनाएँ की हैं जो बड़ी ही समस्या मूलक होती हैं। हियाली छन्द का सबसे प्राचीन उल्लेख प्राकृत भाषा के वजासाग ग्रन्थ में देखने को मिलता है जो करीब १२ वीं १३ वीं शताब्दी का है। उसमें ही हुई हियालियों से परवर्ती प्राचीन राजस्थानी भाषा की हियालियों कुछ निम्न प्रकार की हैं। इससे हमें हियाली के स्वल्प विकास की जानकारी मिल जाती है। अभी तक १६ वीं शताब्दी के कवि देवान की हियाली की ही प्राचीन समझा जाता रहा है। पर हमारे संग्रह १५ वीं शताब्दी लिखित सुभाषित संग्रह की एक प्रति है। उसमें कुछ प्राचीन हियालियों व पहलियों भी मिली हैं। बीकानेर के गान भंडार की एक संग्रह प्रति में भी हियालियों मिली हैं जो १४ वीं शताब्दी की रचना हैं। १४ वीं शताब्दी व १६ वीं शताब्दी तक के जन कवियों के रचित हियालियों सँकड़ों की संख्या में प्राप्त हैं जिनमें से कुछ का संग्रह हमने करीब ३२ वर्ष पूर्व किया था और महमगाबाद से प्रकाशित 'जैन ज्योति' नामक मासिक पत्र में करीब ४० हियालियों प्रकाशनाथ भेजी थी। उस पत्र के सम्बन्ध १९०६ के मिसर के अंक में "जैन कवियों का हियाली साहित्य" चीपक हमारा सस भी छपा था पर उसमें कविवर समयसुन्दर की हियालियों ही प्रकाशित हुई थी। हियाली सगक रचनाएँ जन कवियों की एक विशेष

बौद्धिक देन है — अतः इस लेख में से उनमें से दो बार उदाहरण के रूप में प्रकाशित की जा रही हैं। जिससे उनके स्वरूप का परिचय मिल जाएगा। कसी खूबी के साथ उन्होंने किसी वस्तु के नाम निर्देश के प्रतिरिक्त सारी बातों का वखन करके पठितों एवं श्रोताओं से उसके भावार्थ के बतलाने की भाग की है यह इनके पढ़ने से विदित हो जायगा।

महाकवि समयसु दर १७वीं शताब्दी के राजस्थान के एक प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। यहाँ सब प्रथम उद्दीकी रचित दो हियानियों दी जाती हैं।

(१)

कहिण्यो पठित एह होयाली, सुधुँ छउ चतुर विचारी ।
 नारी एक प्रण भवजर नामइ बीडी नयर मभारी रे ॥१॥क०॥
 मुख अनेक वणि जीम नहीं है नर नारी सु राषई ।
 परण नहीं ते हाये चालइ नाटक पालइ नाचइ रे ॥२॥क०॥
 अत लायइ वणि पानी न पीयइ त्रिवति न राति विहाडइ ।
 पर उपगार करइ वणि परतपि, अयगुण कोडि बिलाडइ । ३॥क०॥
 अविधि छाठ विवत नो प्रापी हियइ विमासी जोख्यो ।
 समयसु दर कहइ समझी सेज्यो, पणिते सरीला मति होख्यो ॥४॥क०॥
 लेखक क संग्रह में (उत्तर चालणी)

(२)

पक्षी एक वनि ऊपनउ जी हो आण्यो नयरि मभार ।
 प्रालडती अणियातडी जी हो बेलइ नहिय सगार ॥१॥
 हरियाली रे चतुर नर हरियाली रे,
 सुबर नर जी हो कहिण्यो हियइ विमाति ।
 साचा पाव वारण कहा जी हो कहै तेह न सावाति ॥२॥ह०॥
 साच सदा चरतो रहै जी घमन करइ छाहार ।
 राति विवत ममतइ रहइ जी हो न चडइ नरवर वार ॥३॥ह०॥
 मूलज बोलइ प्रति घणउ जी हो, बोल्यु नवि समझाय ।
 नारि अघातइ नेदुलज जी हो, बिन अघराथ कषाय ॥४॥ह०॥

ले पिए पनि बापदंड जी हो, प्रमदा पाडयउ पास ।

समयसुबर कहइ ते भएओ जी हो, नारी तउ म करिएउ बेसास ॥१॥ह०॥

इतिहिवाली गीतद्वयम् पं. मानसिंह लखि

(उत्तर कलम)

कविबर धमसी (धर्म बटन) रचित हिवाली द्वय—

(३)

अरथ कहो तुम बहिनी एहनी, सखर हिवाली हे सार । धतुरनर ।

एक पुरप धन भाहै परगढी, सहू जाएँ सखार ॥१॥च०॥

यस बिहुरलो परदेसे भय, धाव सुरतउ जाय ।

बँढो रहै भापएँ परि बापडो, तो पिए धवल कहाय ॥२॥च०॥

कोइक तो सेहन राजा कहै, कोई तो कहै रक ।

सर्वी सरस मुजाएँ कहै सहू, वनि तिए याहे रे धक ॥३॥च०॥

पोते स्वारथ सु पांचा मिले, धार मुराबो रे एह ।

धन तिक नर कहै श्री धमसी, जीये तेह रे जेह ॥४॥च०॥

(उत्तर ३ मख)

(४)

धतुर कहो तुम्हें धू पसु अरथ हिवाली एहोरे ।

नारी एक मनिद छ, सगला पास सनेहो रे ॥१॥च०॥

छोले बढी एकली, कर सगलाइ कामो रे ।

राती बस भोनी रहै दोहें नहीं निज ठागो रे ॥२॥च०॥

धाकर चौकीरार ब्यू, बहुला राखे पासो रे ।

काम कराय ते कहा, विसस धाप विसासोरे ॥३॥च०॥

बोहें मोति जाले बखे, बोहें पिए तिए वारो रे ।

करिष्यो वग धमसी कहै, सुख बाँझो जो सारो रे ॥४॥च०॥

(उत्तर ४ जीम)

